जियो तो ऐसे जियो

लेखक

धर्मपाल शर्मा

आशा प्रकाशन गृह

करोल बाग, नई दिल्ली-110005

प्रकाशक
आशा प्रकाशन गृह
30, नाईवाला, करोल बाग,
नई दिल्ली 110005

दूरभाष 5721221

प्रथम संस्करण 1989
द्वितीय संस्करण *1990*

मूल्य पन्द्रह रुपये

मुद्रक
न्यु ज्ञान आफसैट प्रिंटर्स,
४६५ डी० डी० ए० कोम्प्लेक्स, दयाबस्ती दिल्ली

दो शब्द

देश की उन्नति तथा विकास के लिए यह परम आवश्यक है कि वहाँ के निवासी शिक्षित हो। हमारा देश 'भारत' वर्षों तक परतत्र रहा है। विदेशी शासनकाल मे इस ओर विशेष ध्यान नही दिया गया कि यहाँ के सभी लोग शिक्षित हो। पर आज भारत स्वतत्र है, अपनी सरकार है। अब इस आवश्यक बात को भली प्रकार समझा गया है कि देश के उत्थान के लिए जन मानस को शिक्षित किया जाये। हमारी सरकार नयी से नयी योजनाए बना रही है। नयी शिक्षा नीति का निर्माण किया गया है जिसमे बालको, प्रौढो एव शिक्षा के सभी स्तरो पर सुधार के लिए विशेष ध्यान दिया गया है। आज हमारी सरकार का दृढ सकल्प है कि बिना किसी भेद भाव के सभी नागरिको को शिक्षित करके उनका सभव सहयोग राष्ट्र के विकास के कार्यों म लिया जाये।

दश के प्रति अपने कतव्य का निभाने की इस भावना को सबमे जागृत करना है—इस काय म ऐतिहासिक घटनाओ, महापुरुषो के जीवन तथा व्यवहार स प्रेरणा प्राप्त हा सकती है। मैं स्वलिखित लेखो को पाठको के लिए इस पुस्तक म सकलित कर रहा हूँ ताकि वे राष्ट्र के विकास मे कतव्यनिष्ठ होकर हाथ बटा सकें।

मुझे विश्वास है कि यह पुस्तक देश के सभी बालको, प्रौढो एव सभी स्त्री एव पुरुषो मे उत्साह, उमग एव जागृति पैदा करने मे सहायक सिद्ध होगी।

—लेखक

अनुक्रम

1	देशभक्त की निन्दा असहनीय	5
2	प्राण देश की धरोहर	7
3	इद न मम की भावना	9
4	चलते-चलते राह बन गये	11
5	चलते रहो	14
6	साथ चलेंगे, साथ जियेंगे	15
7	कुन्दन खरा कसौटी पर	18
8	जो लौटकर घर न आये	20
9	मानवता की सच्ची सीढ़ी	22
10	राज्य धर्म का अर्थ है जन-सेवा	24
11	लोक-सग्रह ही एकमात्र धर्म	27
12	स्वतन्त्रता के दीवाने	29
13	पहली पराजय	32
14	निर्भीकता	33
15	अजातशत्रु मालवीय जी	34
16	अद्वितीय सयम	36
17	करुणा के स्रोत	37

18 अनवरत क्रांति का साधक 39
19 राज्याभिषेक किसके लिए ? 41
20 विरोध के लिए कृतज्ञता 44
21 लोक-सग्राहक की दृष्टि 46
22 प्रेरणा के अजस्र स्रोत 47
23 ताकि मशाल जलती रहे 49
24 समता के लिए समर्पण 51
25 हरिजन तो मुक्ति न मागे 53
26 तीर्थयात्रा 56
27 लक्ष्य के लिए समर्पित जीवन 58
28 एक और दधीचि 60
29 कर्तव्य-पालन का सम्मान 62
30 दृढ सकल्प की शक्ति 64
31 कल्पना भी फलती है 66
32 निष्काम कर्म ही फलते हैं 68
33 अटल निश्चय 70
34 अणु मे छिपा विराट दर्शन 73
35 जन जागरण ही कर्तव्य है 75
36 मौत की घाटी से सदेश 78
37 राजसत्ता का दायित्व 80
38 देवत्व के सोपान 82
39 आचरण की सुगध बिखेरो 85
40 कर्म की भाषा मे सवाद 87
41 महत्तर की खोज मे 89
42 धर्म का आदर्श 91
43 पीडितो का ध्यान 93

44 लोकहित मे समर्पित 95
45 उपदेश नही, मौन कार्य 97
46 सेवापथ की शक्ति 99
47 चिकित्सा जिसका धर्म है 101
48 ताकि घर घर दीप जले 104
49 आत्मवत् सर्वभूतेषु 107
50 वतन पर मिटनेवालो का 110
51 जिंदगी के बाद भी 112
52 एक जन्म दूसरो के लिए 115
53 आस्था के आशा दीप 117
54 कर्तव्यनिष्ठा की अग्नि-परीक्षा 119
55 ऐसे बहती है पवित्रता की गगा 121
56 जब राजहठ को झुकना पडा 123
57 ताकि क्राति की मशाल जले 124
58 कचन कसौटी पर 126
59 स्वत्व का अभिमान 128
60 साहस और जातीय सस्कार 131
61 मिट्टी की महक मे पला राष्ट्रपति 133
62 जब सस्कृति के सुमन खिले 137
63 ज्ञान की सार्थकता 139

1 · देशभक्त की निन्दा असहनीय

मदनलाल धींगड़ा नामक एक भारतीय युवक ने लन्दन में, उन के घर में घुसकर ब्रिटिश अधिकारी कर्जन वायली को गोली मार दी। इस घटना से अंग्रेजी जनमानस में सनसनी फैल गई। आतंक के उस दौर में धींगड़ा के पिता ने जो भारत के सेक्रेटरी ऑफ स्टेट थे—मदनलाल को अपना पुत्र न मानने की घोषणा का तार लार्ड मार्ले को भेजा। लन्दन-स्थित धींगड़ा के भाई ने भी उसे अपना भाई मानने से इनकार कर दिया। इस अवसर पर अंग्रेज अधिकारियों ने लन्दन स्थित भारतीय राजभक्तों की एक सभा बुलवाकर मदनलाल धींगड़ा की निन्दा का प्रस्ताव पास करने का निश्चय किया ताकि इस घटना का लाभ क्रांतिकारी न उठा सकें बल्कि वे बदनाम हो जाएँ और ब्रिटिश सरकार को भारतीय क्रान्तिकारी आन्दोलन के दमन का अवसर मिल जाय। लन्दन के कैक्स्टन हॉल में अनेक राजभक्तों के चापलूसी भरे भाषण हुए। अन्त में सभा की अध्यक्षता कर रहे आगा खाँ ने प्रस्ताव पढ़ा—"यह सभा सर्वसम्मति से मदन लाल धींगड़ा की निन्दा करती है।" एक विरोधी स्वर

से गरज उठा—"नही, सवसम्मति से नही, मै इसका विरोध करता हूँ।" उपस्थित लोग विस्फारित नेत्रों से असहमत युवक की ओर देखने लगे—ब्रिटेन की राजधानी मे साम्राज्यवादी शक्ति का प्रबल विरोध करने वाला यह कौन है ! ब्रिटिश अधिकारी तिलमिला उठे। पुलिस बुला ली गई। विरोध करने वाले युवक ने गरजकर कहा—'मैं हूँ विनायक दामोदर सावरकर—मैं इस प्रस्ताव का विरोध करता हूँ।"

पामर नामक एक ऐंग्लो इडियन ने क्रोध मे भरकर सावरकर के मस्तक पर प्रहार किया, जिससे खून बहने लगा। क्रातिकारी एम० पी० थीरुमलाचाय नामक युवक द्वारा छडी के एक ही प्रहार से पामर गिर पडा और क्रातिकारी वी० वी० एस० अय्यर ने उस पर रिवाल्वर तान ली।

"ठहरो !" सावरकर ने कहा, "हमारा लक्ष्य पूण हो चुका है। साम्राज्यशाही की नाक के नीचे विरोध के स्वर बुलन्द हो चुके हैं। आवेश मे हम इससे अधिक फिलहाल कुछ नही करेंगे।" सावरकर और क्रातिकारी साथियो को दोषी न पाकर ब्रिटिश पुलिस गिरफ्तार न कर सकी। सावरकर ने इडिया हाउस के क्रातिकारी साथियो से कहा, "अब हमारा अगला काय होगा पुलिस द्वारा जब्त किये गये मदनलाल धीगडा के बयान को पेरिस मे छपवाकर फासी से पूव उसे सारे लन्दन के अखबार मे प्रकाशित करवा देना।" ब्रिटिश खुफिया पुलिस पूरी तरह सावरकर के पीछे थी कि ऐसा कोई बयान प्रकाशित न करा सके, लेकिन उनकी आँखो मे धूल झोंककर धीगडा के फाँसी वाले दिन ब्रिटेन के सभी पत्रों मे वह बयान छप चुका था।

क्रूर साम्राज्यवाद की छाती पर बैठकर स्वतन्त्रता के लिए

आवाज बुलन्द करने वाले सावरकर उस दिन अंग्रेजी सरकार के शत्रु नम्बर एक घोषित कर दिये गये किन्तु सावरकर के उस अदम्य साहस से भारत के क्रान्तिकारी आन्दोलन की मशाल फिर ऐसी भडकी कि उसकी ज्योति से सैकडो क्रान्ति-दीप जल उठे।

2 प्राण देश की धरोहर

उस समय बालाजी राव पेशवा के सेनापतित्व मे मराठी सेना सयद बधुओ की सहायतार्थ दिल्ली के समीप पडाव डाले हुए थी। सेनापति बालाजी राव के साथ उनका तरुण पुत्र बाजीराव भी था। पडाव के आसपास चारो ओर फसल लहरा रही थी। सेनापति का आदेश था कि किसी भी सैनिक के द्वारा किसानो की फसल को कोई क्षति न पहुँचने पाये। एक दिन मराठी सेना के कुछ उद्दड सिपाहियो ने घोडो को खिलाने के लिए कुछ खेत काट लिये। बेचारे किसान रोते हुए सेनापति के पास आए, लेकिन वे शिविर मे नही थे। बाजीराव ने उन किसानो की प्रार्थना सुनी। उन पर किए गए अत्याचार से वे क्षुब्ध हो उठे।

उन्होने स्वय अपराधियो की जाँच की तो पता लगा कि इन उद्दड सिपाहियो के सेनानायक अद्वितीय मराठा वीर मल्हार राव होल्कर थे। अपने सैनिको को बाजीराव द्वारा फटकारे जाते देखकर होल्कर कुछ क्रुद्ध हो उठे और बाजीराव पर प्रहार कर बैठे। रात्रि को सेनानायको की सगत हुई तो उद्दड सैनिको को दड दिया गया और मल्हारराव से कहा गया कि वह अपने

दुष्कृत्य के लिए बाजीराव से क्षमा माँगे। मल्हारराव को क्षमा माँगनी पडी। परन्तु मल्हारराव मन ही मन बाजीराव से बदला लेने के अवसर की तलाश मे रहने लगे।

एक दिन सयोगवश बाजीराव अकेले अपने घोडे पर चढे हुए कही से लौट रहे थे। भ्रमण पर निकले मल्हारराव भी अकेले थे। मल्हारराव ने अपने अपमान का बदला लेने का यह उचित अवसर समझा और बाजीराव की छाती पर भाला तानते हुए बोले, "बोलो, अब बचकर कहाँ जाओगे?" बाजीराव इस स्थिति से तनिक भी विचलित नही हुए। वे बोले, "मल्हारराव, जीवन-मृत्यु तो वीरो के लिए एक खेल मात्र है। यदि लडना ही चाहते हो तो मुझे भी शस्त्र दो और अपने शौय की परीक्षा कर लो, परन्तु इससे पूव यह समझ लो कि आपस मे इस प्रकार लडकर प्राण गँवाने से क्या हमारे लक्ष्य को हानि न पहुँचेगी? क्यो न हम प्रतिज्ञा करें कि हम वैर भाव छोडकर देश और जाति के शत्रुओ से लडेंगे और देशभक्त शूरवीरो का दायरा अधिक बढाते जायेंगे।"

देशभक्त बाजीराव के अविचलित धैय और प्रबोधक शब्दो का मल्हारराव पर ऐसा जादू हुआ कि उन्होने तुरन्त भाला फेंक दिया और आजीवन बाजीराव के साथ शत्रु दल से लडने की प्रतिज्ञा की। इतिहास साक्षी है कि अजातशत्रु बाजीराव की दूरदृष्टि और प्रखर देशभक्ति से प्रेरित मल्हारराव होल्कर ही नही, सैकडो शूरवीर प्राण हथेली पर लिये उनके साथ कदम मिलाकर चलते रहे। •

3 इद न मम की भावना

"दादा! माँ की हालत खराब है। पता चला है कि उन्हे अनेक बार उपवास करना पडता है। इजाजत हो, तो इस धन मे से हम उन्हे कुछ रुपया पहुँचा दें।" चन्द्रशेखर आजाद के चरणो मे दल के लिए एकत्रित धन समर्पित करते हुए क्रातिकारी दल के एक कार्यकर्ता ने उनसे पूछा। आजाद के चेहरे पर एक क्षण को कुछ कठोर रेखायें उभर आयी। हाथ मे पकडे हुए पिस्तौल को उछालते हुए बोले, "यदि क्रान्तिकोष मे से कुछ देना ही पडा तो माँ के लिए मैं पिस्तौल की एक गोली ही दे सकता हूँ, जो सदैव के लिए काफी होगी, इस से अधिक कुछ नही।" क्रान्तिकारी युवक अवाक् आजाद का मुँह ताकते रह गये। आजाद ने स्थिर दृष्टि से दल के सदस्यो की ओर देखा और दृढ स्वर मे बोले, "प्राणो की बाजी लगाकर जो धन स्वतन्त्रतादेवी की उपासना के लिए आप एकत्रित करते हैं, उनके एक पैसे पर भी किसी का व्यक्तिगत अधिकार नही हो सकता। फिर मेरी माँ के लिए ही उसमे से कैसे दिया जा सकता है!"

सार्वजनिक धन के प्रति निस्पृहता की यह दृष्टि ही क्रान्तिकारियो के सगठन को अभेद्य बनाये रही। व्यक्ति हो या सगठन, जब तक सार्वजनिक धन के प्रति उसमे प्रामाणिकता रहती है, उनमे पवित्रता और अभयता बनी रहती है।

उन दिनो की बात है जब सुभाष बाबू आजाद हिन्द सेना के साथ रगून के मोर्चे पर थे। अपने व्यक्तिगत व्यय के लिए उन्होने अल्पमत धनराशि निश्चित कर रखी थी। उस बजट मे

से प्रतिदिन वे तीन केले भोजन के बाद लेते थे। एक दिन उनके सेवक 'काली' ने कहा कि केला महँगा हो गया है। "केला महँगा हो गया है, तो कल से दो केले लाया करो।" सुभाष बाबू ने कहा। कुछ दिन के पश्चात काली ने फिर कहा, "महाराज, केला और महँगा हो गया है।" "तो फिर कल से एक ही केला लाया करो।" सुभाष बाबू ने कहा। आजाद हिन्द सेना जैसे महान संगठन का संचालन करने वाले सुभाषचन्द्र बोस स्वयं के प्रति जितने कठोर थे इस मामले मे, सहयोगियो के प्रति उतने ही उदार। यही कारण था कि आजाद हिन्द सेना का प्रत्येक सैनिक उन्हे पितातुल्य समझता था। सार्वजनिक धन के प्रति प्रामाणिकता रखने वाले नेताओ के पीछे ऐसे ही समर्पित अनुगामियो की परम्परा खडी होती है।

श्री गुरुजी (मा० स० गोलवलकर) ने इसीलिए एक बार कहा था कि धन सम्पन्नता बढने पर अकसर बडे बडे संगठन भी विश्रृखलित हो जाया करते हैं क्योकि संगठनो मे धन सम्पन्नता का मोह पथभ्रष्ट तत्त्वो के लिए प्रलोभन का कारण बन जाता है और वे किसी न किसी प्रकार स्वार्थपूर्ति के लिए संगठनो मे घुस जाया करते हैं।

दीनबन्धु ठक्कर बापा इस दृष्टि से बडे सजग रहते थे कि सार्वजनिक धन का तिल मात्र भी दुरुपयोग उनका कोई कार्यकर्ता न करे। सार्वजनिक धन के दुरुपयोग और हिसाब-किताब के सम्बन्ध मे बापा स्वयं भी जागरूक थे। हरिजन सेवक संघ के कोष मे से एक बार दो कार्यकर्ताओ ने कुछ गोल-माल कर दिया। सम्बन्धित कार्यकर्ता दिल्ली मे बापू के सामने बुलाये गये। दोनो ने अपनी परिस्थितियाँ समझायी। बापू बडे

ध्यान से सुन रहे थे। दोनों पुराने कार्यकर्ता थे। पर बापा में इतना धैर्य कहाँ! वे एकदम बापू पर बरस पड़े, "आप इतना समय नष्ट कर रहे हैं। इनके साथ सहानुभूति का व्यवहार बिलकुल नहीं करना चाहिए। इन्हें तो एकदम जेल भेज देना चाहिए। जिसे स्वार्थपूर्ति करनी है, उसे सेवा के पवित्र पथ से हट जाना चाहिए।"

•

4 चलते-चलते राह बन गए

"क्या आप एकदम तैयार हैं?" नेताजी सुभाषचन्द्र बोस से आश्चर्यपूर्ण मुद्रा में सैनिक ने पूछा।

"मैं हर समय तैयार रहता हूँ।" सहज मुसकान के साथ सुभाषचन्द्र बोस ने उत्तर दिया—"आखिर मेरा सब कुछ जब मातृभूमि के लिए समर्पित है तब ऐसी सिद्धता भी चाहिए न।"

उस समय रात्रि के आठ बजे थे, जब आजाद हिन्द फौज का एक सैनिक उन्हें एक कार्यक्रम के लिए बुलाने आया था। उसने सोचा था कि दिन भर के थके हारे सुभाष अब विश्राम की मुद्रा में होंगे और उन्हें तैयार होने में कुछ देर लगेगी। लेकिन उसे यह देखकर आश्चर्य हुआ कि अपना सैनिक वेश पहने हुए ही वे बिस्तर पर लेट गये थे।

"चकित-से क्यों हो, मित्र!" सुभाष बाबू ने पूछा, "इस जीवन में मेरे लिए पूर्ण विश्राम नहीं है, इसलिए ऐसे ही थोड़ा आराम कर लेता हूँ ताकि किसी भी क्षण कहीं भी जाने की तैयारी में समय नष्ट न हो।"

युवा सैनिक नतमस्तक हो गया, अपने नेता की यह

अहोरात्रि सिद्धता देखकर। उसे कुछ ग्लानि हो आयी अपने पर। सोचने लगा, 'क्या ऐसे नेता के प्रति मैं पूर्ण ईमानदार हूँ? क्या मैं उनका सच्चा सहयोगी बन पाया?" और तीव्र स्फुरण में से एक निर्णय उभरा कि, "मैं भी चौबीसों घंटे तन मन से अपने नेता के लिए समर्पित रहूँगा।"

थोडी देर बाद सुभाष रंगमंच के कार्यक्रम में उपस्थित थे। आजाद हिन्द फौज के सैनिकों ने एक नाटक का आयोजन किया था। सुभाष बाबू को उसमें आमन्त्रित किया गया था। नाटक था भारतीय क्रान्तिकारियों पर अंग्रेजों के जुल्मों का प्रदर्शन और क्रान्तिकारियों के न झुकने, न टूटने की स्थिति के सन्दर्भ में। एक युवक अंग्रेज पुलिस अधिकारी का अभिनय कर रहा था। क्रान्तिकारियों पर अमानवीय जुल्म और यातनाओं का सुन्दर अभिनय था उसका।

"नहीं नहीं, मैं ऐसा नहीं होने दूँगा।" सहसा सुभाष बाबू चीख पडे—"गद्दार कहीं के! तुम देशभक्तों का दमन नहीं कर सकते।" आवेश से सुभाष बाबू का चेहरा तमतमा उठा था और उन्होंने अपना जूता निकालकर पुलिस आफिसर के सिर पर दे मारा।

'पुलिस आफिसर' का अभिनय करने वाले युवक ने वह जूता उठाकर माथे से लगा लिया। हर्षातिरेक से उसके आँसू उमड पडे और वह बोला—"मैं धन्य हूँ कि नेताजी ने मेरे अभिनय को सराहा है। उनका यह भावावेश ही मेरे अभिनय की कसौटी है और यह जूता सबसे बडा इनाम।"

युवक ने नेताजी के चरण छुए। सुभाष बाबू ने उसे सीने से लगा लिया। वे बोले—"मैं भावुक हो उठा था, मेरे दोस्त।"

उनको फिर आवेश आ गया था—"कल्पना मे भी मैं देशभक्तो का अपमान नही सह पाता—मैं भूल ही गया था कि यह अभिनय है। तुम्हारे इस सुन्दर अभिनय के लिए मेरी हार्दिक बधाई।" युवक धन्य हो गया अपने नेता का आशीष पाकर।

और एक दिन जब वे एक सभा के विसर्जन के बाद अपनी कार मे बैठ रहे थे कि एक युवक कॉपी-कलम लेकर उनके पास आया। बोला—"योर आटोग्राफ, प्लीज!" नेताजी ने युवक को सिर से पाँव तक देखा। उनकी सम्प्रेषणीय दृष्टि युवक झेल न पाया—"तुम्हे शर्म नही आती ये आटोग्राफ (हस्ताक्षर) माँगते हुए! यह लडकियो का काम है। तुम्हे सुभाष से प्यार है तो उसके कार्यों मे हाथ बँटाओ। मुझे कायर प्रशंसको की नहीं, कमठ कार्यकर्ताओ की जरूरत है।" युवक लज्जित हो उठा था। संकल्प से उसकी मुट्ठी तन गयी। बड़े लोगो के आटोग्राफ की नोटबुक सड़क पर फेंक दी।

"अरे, तुम?" सुभाष बाबू ने पूछा। आज सुभाष बाबू के चकित होने की बारी थी। वे देख रहे थे उस युवक को, जो आज उनकी सेना की अग्रिम पंक्ति मे खड़ा था। सुभाष ने हँसकर कहा, "लाओ, अब तुम्हारी आटोग्राफ बुक पर दस्तखत कर दूँ।"

"अब तो वह फेंक दी है, सर। सैनिको के लिए क्या यह काम शोभा देता?" सुभाष बाबू ने प्यार से उसकी पीठ थपथपाई, "कौन कहता है कि मेरे देश मे जाँबाजो और शूरवीरो की कमी है, बस उन्हे आवाज देने की ही तो जरूरत है।" सुभाष के ये शब्द आज भी सत्य हैं, सदैव रहेंगे। ध्येय के साथ एकरूप होने वाले कदमो के पीछे सैकड़ो कदम ..... पड़ते हैं।

5 चलते रहो

क्रान्तिकारी नारायणदास को सन्यासी वेश मे देखकर उनके साथी भगवानदास माहौर ने पूछा, "अरे, तुम भरी तरुणाई मे यह सन्यासी वेश बनाए क्यो घूमते हो भला ?"

'पूर्ण स्वराज्य तो बहुत बडी बात है भैया, दैनिक स्वराज्य का प्रबध पहले जरूरी है। उसी का प्रबध मैंने किया है।" खरे ने व्यग्यपूर्ण मुस्कराहट से उत्तर दिया।

"क्या मतलब ?" माहौर ने चौंककर पूछा।

"देखो भाई," खरे ने सहज मुस्कान के साथ कहा, 'देश और समाज का काम करने वाले कायकर्ता को दैनिक भोजन की व्यवस्था भर चाहिए और इतनी हमारा समाज भगवा वेश-धारी की कर देता है।" नारायणदास का सारा जीवन दशन ही सेवा का दशन बना रहा। उसमे कभी कुछ निर्जीपन आया ही नही। स्वतत्रता प्राप्त होने के बाद अनेक क्रान्तिकारी अपने अपने निजी कार्यों मे लग गये कि चलो, अब तो देश आजाद हो गया, अब कैसा काम। लेकिन नारायणदास का चितन था कि समाज और देश की सेवा का काय एक जीवन्त सकल्प है, इसमे विराम कैसा ? इसलिए स्वाधीनता के बाद वे देश का भविष्य सँवारने के लिए सघष मे जुट गए। जब हैदराबाद का आय सत्याग्रह चला तो नारायणदास उसमे भी चले गये। वापस लौटने पर श्री माहौर ने पूछा, "आप और सत्याग्रह ?" इस पर खरे का उत्तर विचित्र किन्तु अथपूण था। उन्होने कहा, 'बँधे रहने से घोडा और बैठे रहने से सिपाही बिगड जाता है, यह तो कसरत करने जैसी बात है।' सिद्धान्तवादिता से मुक्त

किन्तु कितनी बडी सिद्धान्त की बात कह दी थी श्री खरे ने ! जीवन के नियमित कार्यों के समान ही देश के प्रति कर्तव्य जीवन का अग होना चाहिए। और उसका अंत कैसा हो ? यह भी खरे ने सिद्ध करके ही दिखाया। टीकमगढ राज्य के ग्रामो मे वे शोषित पीडित जनता की आवाज बुलन्द करते घूमते रहे। जमीदारो द्वारा उनके शोषण के विरुद्ध लडते रहे। एक दिन उन पर जमीदारो ने आक्रमण करने की योजना बनाई। साथियो ने बहुत समझाया कि आज वे न जाएँ, उनकी जान को खतरा है।

"आज ही टालने से क्या होगा ?" खरे ने कहा, 'मुझे तो आजीवन इसी तरह काम करना है। सवाल तो काम करने के ढग का है, अन्याय के विरुद्ध लडने का है, और वह अत तक जारी रहेगा।" और नारायणदास खरे अपनी टूटी-फूटी साइकिल उठाकर चल दिए। मार्ग मे जमीदारो के गुडो का भारी गिरोह था—कुल्हाडी, बन्दूक, तलवार और लाठियो से लैस। वे एक निहत्थे क्रातिकारी पर टूट पडे और उनके टुकडे टुकडे कर डाले। नारायणदास देश की जिस मिट्टी मे पले बढे थे, उसी मे विलीन हो गये लेकिन उनके ये शब्द आज भी फिजाँ मे गूँज रहे हैं कि क्रातिकारी कभी विश्राम नही करता। अविराम चलते रहने वाला ही इस पथ का सच्चा पथिक है और उसकी अतिम शरणस्थली मातृभूमि की गोद है। ●

6 साथ चलेंगे, साथ जियेंगे

"डॉ० घोष, जबकि हमारे मित्र, सहकर्मी, देशवासी गोलियो के शिकार हो रहे हैं और मेरे भाग्य मे उनके साथ कधे से कन्धा

भिडाकर गोलियाँ झेलना नही लिखा है, तब इस जेल से अधिक उपयुक्त जगह मेरे मरने के लिए दूसरी नही हो सकती।" डॉ० राजेन्द्र प्रसाद ने ये शब्द 1943 मे पटना जेल मे बन्दी के रूप मे जेल सुपरिटेंडेंट डॉ० घोप से उस समय कहे जब अस्वस्थता के कारण उन्हे छोडे जाने की चर्चा चल पडी। वे बोले, "बीमार के नाम पर सरकार मुझे छोडना भी चाहेगी तो मैं अपना वश रहते बाहर नही जाऊगा वल्कि यही मरूँगा।" यह सुनकर डॉ० घोप चुपचाप बाहर चले गये। देशवासियो के साथ स्वातन्त्र्य सघर्ष मे कन्धे से कन्धा भिडाकर अग्रिम पक्ति में लडने मरने की चाह रखने वाले राजेन्द्र बाबू मे जहाँ यह सैनिक-शौर्य का भाव था वहाँ उनकी लोकदृष्टि भाव-विभोर कर देने वाली थी।

उन्ही दिनो की घटना है, राजेन्द्र बाबू की मुलाकात के लिए आने वालो से पता चला कि जेल मे बन्दी कुछ कार्यकर्ताओं के परिवारो की हालत बडी दयनीय है और उनकी किसी को भी चिन्ता नही है। परिवार भूखो मरने की स्थिति मे है। यह समाचार सुनकर डॉ० राजेन्द्र प्रसाद मर्माहत हो उठें। एक दिन जब उनके पुत्र मृत्युजय प्रसाद उनसे जेल मे मिलने आये तो राजेन्द्र बाबू ने कहा कि उक्त परिवारो की स्थिति सकटपूर्ण है, अत अन्य कार्यकर्ताओ से बाहर मिलो और उनकी भरसक सहायता की व्यवस्था करो। मृत्युजय प्रसाद सम्भवत प्रयत्न करके भी इस काय मे सफल नही हो पाये थे, लेकिन एक महीने बाद दोबारा जेल मे भेंट होने पर राजेन्द्र बाबू ने फिर उन परिवारो की सहायता के बारे मे पूछा। जब उन्हें पता चला कि इस सम्बन्ध मे कुछ नही किया जा सका तो वे बडे दुखी हुए। वे बोले "मृत्युजय, तुम मेरे नाम पर ऋण लेकर उन

परिवारो की सहायता करो। मैं यदि जेल से जिन्दा निकला तो कोई न कोई प्रवन्ध करके यह ऋण चुका दूगा। यदि जेल मे ही मर गया तो यह भार तुम्हें ही उठाना होगा।" कुछ समय बाद भेंट के बावजूद जब उन परिवारो की आर्थिक सहायता न हो पायी तो राजेन्द्र बाबू ने शात और स्थिर स्वर मे कहा, "मृत्युजय, तुम समझ नही रहे हो। मुझसे यह बरदाश्त नही होता है कि तुम सभी लोग सुखी रहो और मेरे सहकर्मी जो जेल मे सड रहे हैं, उनके बाल-बच्चे भूखे मरें। ।" वे काफी गम्भीर स्वर मे बोले, "बहुत सम्भव है तुम्हे एक दिन यह सुनने को मिले कि इसी दुख के प्रायश्चित मे मैंने अनशन आरम्भ कर दिया।" यह सुनकर मृत्युजय प्रसाद घबरा उठे और बाबूजी के राष्ट्रसेवी व्यवसायी मित्र बनारसीप्रसाद झुनझुनवाला से यह घटना कह सुनाई। मृत्युजय प्रसाद के जेल से मिलकर लौटने पर वे राजेन्द्र बाबू का समाचार पूछने आये थे। उन्होने तुरन्त तीन सौ रुपये मासिक की व्यवस्था उन परिवारो के लिए कर दी। फिर अन्य लोगो तक भी यह समाचार उन्होने पहुँचा दिया और सहायता की बाढ-सी लग गयी। अगली भेंट मे राजेन्द्र बाबू को जब यह सहायता कार्य सम्पन्न होने का समाचार दिया गया तो रुग्णता से म्लान उनके चेहरे पर अनिर्वचनीय आनन्द की आभा उभर आयी। भरे कण्ठ से राजेन्द्र बाबू इतना ही कह पाये—"देश के लिए अपना जीवन खपाने वाले बंधुओ से अधिक भला और कौन हो सकता है, उनके दुख-सुख की चिन्ता करना हमारा अनन्य धर्म है।" इस धर्म सन्तोष से उनका रोग काफी घटने लगा था।

7 कुन्दन खरा कसौटी पर

उस दिन जब हरे भरे खेतो के पास से लालबहादुर शास्त्री की कार गुजर रही थी, सहसा उन्होने अपने कार चालक को रुकने का सकेत किया । निर्जन स्थान में शास्त्री जी के द्वारा रोके जाने पर चालक कुछ चकित हुआ । शास्त्री जी ने कहा, ' देखो सामने चने का खेत है, उसमे से कुछ चने ले आओ लेकिन खेत के मालिक से पहले अनुमति ले लेना ।" चालक खेत के स्वामी के पास गया और बताया कि कार मे बैठे भारत के प्रधानमन्त्री शास्त्री जी कुछ हरे चने चाहते हैं । यदि आपकी अनुमति हो तो ले लें । अब चकित होने की बारी खेत के किसान की थी । भारत का प्रधानमन्त्री थोडे चनो के लिए अनुमति माँग रहा है , कितना आश्चर्य ! जबकि छोटे छोटे सरकारी कमचारी तक स्वय को मालिक समझकर व्यवहार करते हैं । किसान शास्त्री जी की महानता पर भाव-विह्वल हो गया । स्वय उसने चने के कुछ पेड उखाडकर शास्त्री जी को भेंट किये और प्रेमाश्रु छलकाते हुए बोला, "आज मेरा जीवन सफल हुआ, देवता के दशन कर लिये । जैसा मैंने सुना था, उससे अधिक ही आपको पाया ।" शास्त्री जी ने प्रेम से किसान की पीठ थपथपाई और विनम्र मुस्कान फेंक आगे बढ चले । शायद शब्दाडम्बर से भरपूर भाषण उस ग्राम्य कृषक को इतना अभिभूत न करता जितना शास्त्री जी का यह शिष्ट और विनम्र व्यवहार कर गया । व्यक्ति के चरित्र की महानता उसके वाह्य जीवन-व्यवहार मे रहती है। वही व्यक्तित्व लोकनायकत्व प्राप्त करते हैं जिनके जीवन की हर कृति से प्रकाश झरता है ।

गाधी जो की लोकप्रियता का रहस्य भी उनके व्यक्तित्व की चुम्बकीय शक्ति था। निस्सन्देह समर्पित और शिष्ट व्यक्तित्व मे चुम्बकीय शक्ति उत्पन्न हो जाती है। एक बार गाधीजी के साथ उनकी एक अनन्य भक्त अंग्रेज महिला यात्रा पर थी। प्रात काल होते ही गाधीजी उनके कक्ष की तरफ जा निकले। देखा, उक्त भद्र महिला कुछ परेशान थी। उन्होने मुसकराते हुए पूछा, "बात क्या है, आप कुछ परेशान नजर आती हैं?"

"मुझे बेड टी (बिस्तर पर ही जल्दी चाय) की आदत है और शायद यहाँ अभी देर तक कोई व्यवस्था न होगी।" महिला ने बतलाया। 'आपके लिए मैंने प्रबन्ध कर लिया था। चाय का सारा सामान मेरे कमरे मे है। चाय आपको मिल जायेगी।" गाधीजी ने कहा। "लेकिन आप तो चाय पीते ही नही, आपको मेरा ध्यान कैसे रह गया?" महिला ने साश्चर्य पूछा।

"मैं चाय नही पीता यह तो ठीक, परन्तु मुझे पता था कि आप यह जरूर पीती हैं, इसलिए रख लिया था।" गाधीजी ने [illegible] मुसकान के साथ कहा। उक्त महिला ने अपने संस्मरणों में [illegible] लिखा था कि मैं गाधीजी की विद्वत्ता से कभी इतना [illegible] नही हुई जितनी उनकी ऐसी छोटी-छोटी बातों से। [illegible] साथियो की इतनी चिन्ता एक माँ को ही याद [illegible], किसी अन्य के लिए यह सभव नही।

दैनिक जीवन की छोटी छोटी [illegible] महानता की झाँकी मिलती है। [illegible] दूसरो के सुखो के उत्स उभरते हैं, [illegible] खरे उतरते हैं।

8 जो लौटकर घर न आये

"देखो मैं अन्तिम क्षण तक सड़क को घेरे रहूंगा " मेजर शैतानसिंह पूरी बात न कह पाये थे, बदन मे धँसी गोली से विष फैलता जा रहा था। मेजर पीडा पर काबू पाते हुए फिर बोले, "तुम तुम सब सैनिक साथियो को लेकर सुरक्षित स्थान पर लौट जाओ।"

"मेजर ! लेकिन हम ऐसी हालत मे आपको घायल छोडकर कैसे जा सकते हैं ?" बात अभी पूरी भी न हो पायी थी कि चुशूल हवाई अड्डे पर चीनी मशीनगन से गोलियो की एक बौछार और आयी, मेजर शैतान सिंह के कुछ और साथी मौत की गोद मे सो रहे। मेजर दृढतापूर्वक बोले, "तुम्हे याद है हमने इसी मोर्चे पर चीनियो के छक्के छुडाये थे। लेकिन अब हम भारी तोपो और टको से घिर चुके है।' रिसते घाव की पीडा से कराहते हुए वे बोले, "मैं तो अब बच नही सकता, इसलिए मेरा हुक्म मानो। जाकर मोर्चे की तैयारी करो ताकि एक भी चीनी आगे न बढ सके। तब तक मैं रक्त की अंतिम बूद शेष रहने तक उन्हे रोके रखूगा।"

आज्ञाकारी सैनिक अपने नेता को मौत की गोद मे छोडकर विवश लौट रहे थे। अपनी मौत पर आह न भरने वाले उन जवानों की आखो से भी उस समय अविरल अश्रु बह रहे थे। जाते-जाते उन्होने फिर पीछे मुड़कर देखा—सारे परिवार के ममता मोह को पीछे छोड आने वाले जवान अपने वीर मेजर को मौत की गोद मे तडपते देखकर विह्वल हो रहे थे। मेजर ने कठोर स्वर मे फिर आदेश दोहराया, 'जल्दी वापस लौटो,

मैं दुश्मन को रोके
वाणी से व्यग्र आवेश
आग उगल रही थी।
बन चुका था। लेकिन
से वे तब तक दुश्मन
मोर्चे तक न पहुँच
छाती के पार निकल
भारत की मिट्टी
पितामह की तरह
संकल्प-पूर्ति तक मौत
था। अपने बेरे
वीर ने चिरविदा ले

की सतत रक्षा के
आजादी बरकरार
ने यह
के लिए प्रतिक्षण
जीवन की सर्द।
थे। 23 अक्टूबर
ने जूम-सा
जोगेन्दर
साथियों के
चीनी सैनिकों को
उस दिन कुछ
सूबेदार जोगेन्दर

की जाँघ मे धँस गयी। रक्त का फव्वारा छूट पडा। किन्तु वीर जोगेन्दर को फुर्सत कहाँ थी कि वह अपने बहते खून को देखे। उसकी नजरें तो दुश्मन पर थी और हाथो की उगलियाँ मशीन गन पर। विशाल टिड्डी दल की तरह चीनी सेना बढती जा रही थी और सूबेदार जोगेन्दर सिंह के पास थे केवल सौ जवान। चीनी अफसर ने ऊँचे स्वर मे समपण का आदेश दिया। वीर जोगेन्दर ने उत्तर दिया गोलियो की बौछार से। जोगेन्दर के सैनिक *अद्भुत पराक्रम से लडते हुए गिरते* रहे।

जोगेन्दर के पास गोलियाँ भी खत्म हो चुकी थी। मशीनगनो की गोलियो की बौछार से जोगेन्दर मानो स्नान कर रहे थे। अन्त मे उन्होने अपनी रायफल पर सगीन चढाई। आखिरी गोली छाती के पार हो जाने तक वे सात चीनियो को मौत के घाट उतार चुके थे।

ऐसे कितने मेजर और सैनिक चले गये जो कभी लौटकर घर नही पहुँचे, जिनके घर के दीपक सदा के लिए बुझ गए, माताओ की गोद सूनी हो गयी और पत्नियो के सुहाग पुँछ गए, लेकिन इन शूरवीर पुत्रो के रक्त से ही तो स्वतत्रतादेवी का *अर्चन होता है। देश के विशाल आँगन मे असख्य दीप जलते* रहे, इसीलिए तो वे अपना जीवन-दीप बुझाते हैं।

9 मानवता की सच्ची सीढी

"माँ, तुम्हारी आँखो मे यह आँसू। कहो अपने पुत्र से क्या कष्ट है तुम्हें ?" निधन गृहस्वामिनी से भिक्षा ग्रहण करते हुए जगद्-

गुरु शकराचार्य ने आर्द्र कठ से पूछा। यह स्नेहिल स्वर सुनकर गृहस्वामिनी की आँखो से अत्यन्त वेग से अश्रुधारा बह चली, कठ अवरुद्ध हो गया। अत्यन्त कठिनाई से वह कह पायी कि पिछले तीन दिन से उन्हे अन्न के दर्शन नही हुए। निर्धनता के इस अभिशाप के कारण वह घर मे पडे सूखे आँवले ही भिक्षा मे दे पा रही है इसलिए इतनी दुखी है। परदुखकातर शकराचार्य का मन इस दीन दशा को देखकर द्रवित हो उठा। "कल्याण होगा, माँ" का आशीर्वाद देकर वे आगे बढ चले। समीप ही खडी एक अट्टालिका के द्वार पर वे जा पहुँचे। धन-कुबेर गृहस्वामी के आश्चर्य की कोई सीमा न थी। जगद्गुरु और उसके द्वार पर! वे तो कभी लक्ष्मीपतियो के दरवाजे पर जाते ही नही। उसने अपने भाग्य को सराहा। शायद किसी पुण्य का यह सुफल हो। आदरयुक्त प्रणाम कर जगद्गुरु से आतिथ्य ग्रहण करने की प्रार्थना की। आज उन्होंने सहज-सरल भाव से आतिथ्य ग्रहण कर लिया। लक्ष्मीपति ने विनीत भाव से जगद्गुरु के चरणो मे बैठते हुए कहा, "आज मुझे आज्ञा दीजिए गुरुदेव, मैं आपके किसी काम आ सकू, दर्शन देकर आपने तो मुझे कृतार्थ कर दिया।"

"लक्ष्मीपति!" शकराचार्य का मर्माहत स्वर फूट पडा, "तुम्हारे पडोस मे एक निर्धन, गरीब परिवार तीन दिन से अन्न के दाने-दाने को तरस रहा है और तुम स्वय पकवान खाओ, क्या यही धर्म है? जगद्पिता प्रसन्न होगे—इससे" प्रश्न मे असीम व्यथा थी, कर्तव्य का निर्देश था। शकराचार्य ने फिर कहा। "जब तक पडोसी भूखे परिवार का उपवास नही टूटेगा, मैं तुम्हारे घर जल भी ग्रहण नही करूंगा।"

लक्ष्मीपति उठे और उसी क्षण पड़ोसी के घर को धन धान्य से पूर्ण बनाने का निर्देश दिया और जगद्गुरु को आश्वासन दिया, "अब उस घर के दैन्य-दारिद्रय सदैव के लिए विदा ले चुके हैं। आप आतिथ्य ग्रहण कर कृपा करें सेवक पर।" शकराचार्य ने जब अन्न का प्रथम ग्रास उठाया तो महान सन्यासी के मुखमडल पर दिव्यानन्द की आभा छिटक रही थी और नयनो से छलक रहे थे आनन्दाश्रु।

सृष्टि के एक-एक पुत्र की पीडा से जिस हृदय के तार झनझना उठे, वही परदुखकातर मनुष्य ईश्वर का सच्चा पुत्र कहलाने का अधिकारी है। गृहस्थ हो या सन्यासी, दूसरो के दुख से जिसका हृदय आदोलित हो उठता है, उनके दुखो को जो गरल सम पान कर लेता है, निश्चय ही वह नीलकठ सा शिवत्व प्राप्त कर लेता है। •

10 राज्य-धर्म का अर्थ है जन-सेवा

अपने अश्वो की पीठ पर सवार सब साथियो ने एक दूसरे की ओर देखा, घोडो को एड लगाई और द्रुत वेग से चल पडे। सहसा तरुण नायक शिवाजी एक स्थान पर तनिक ठिठके और अपने एक साथी की ओर घूमकर बोले, "सूर्याजी, देखते हो सामने यह मन्दिर।" सबकी दृष्टि मन्दिर की ओर घूम गई। खण्डित मूर्ति, सूना मन्दिर। एक साथी ने नीचे झुककर मूर्ति के टुकडो को जोडने का उपक्रम किया, शिवाजी के मुख पर आवेश की लालिमा छा गई। वे बोले, "ऐसे नही बन्धु, इन जोडने वाले हाथो को इतना सबल बनाना होगा कि तोडने वाले

हाथ काट दिये जायें।" सभी साथियो ने नायक के सकल्प को दोहराया, "अवश्य, हम वह शक्ति सचित करके ही दम लेंगे।"

विदेशियो से भारतभूमि को मुक्त कर स्वराज्य स्थापना के लिए सगठन-हेतु युवको की यह टोली गाँवो, कस्बो और गिरि-घाटियो को लाँघती घूम रही थी। शिवाजी बीच-बीच मे दासता की ऐसी क्रूर परछाइयो को देखकर आविष्ट हो जाते थे। "साथियो, चलो उस मदिर की ओर।" शिवाजी ने कहा कि वे सब रामेश्वरम महादेव के मन्दिर में पहुँचे। सबने देवाधि-देव की बिल्वपत्रो से पूजा की और फिर प्रत्येक ने जय महाकाल के सम्मुख वज्र सकल्प किया कि जब तक स्वराज्य प्राप्त नही कर लेंगे, चैन से नही बैठेंगे। टोली बढती गई और सैकडो बलिदानी युवको का सगठन स्वराज्य निर्माण के लिए शिवाजी के झडे तले इकट्ठा होता गया। एक दिन बीजापुर के शाह आदिल शाह के पास खबर पहुँची—'शाहजी का लडका शिवाजी बगावत का झडा बुलन्द कर रहा है। उसने तोरण, सुभाग भगल, जावलि और कोडा आदि के अनेक प्रमुख किले जीत लिये हैं।' बादशाह चौंक उठा। उसने प्रारम्भ मे जिसे शिवाजी की बाल उद्दडता समझी थी—वह आज उसके लिए चुनौती बन गई। सहसा बादशाह ने व्यग्य से वजीर मुस्तफाखान से कहा, "खान, शाहजी हमारी नौकरी मे है, तुम उसे किसी चाल से बन्दी बनाने की कोशिश करो। बेटे की अक्ल अपने आप ठिकाने आ जायगी। उधर बालाजी हैबतराय शिवाजी पर हमला कर उसका दिमाग ठिकाने लगा देगा।"

आदिल शाह का षड्यन्त्र शुरू हुआ। शिवाजी पर आक्रमण किया गया, किन्तु बालाजी हैबतराय परास्त हुए। फिर

"गुरुदेव, यह राज्य आपका है, मैंने अपने कर्तव्य का पालन किया।" समर्थ गुरु ने स्नेहसिक्त स्वर मे आदेश दिया, "राज्य धर्म का है शिवा, तुम सेवक बनकर जनहितार्थ उस का सचालन करो, यही मेरा आदेश है।"

इतिहास साक्षी है, शिवाजी अन्तिम क्षण तक विनम्र सेवक की भाँति धम, सस्कृति और स्वदेश का सरक्षण करते रहे। •

11 लोक-सग्रह ही एकमात्र धर्म

प्रताप प्रेस के द्वारपाल ने सूचना दी कि अमुक व्यक्ति दूसरी बार टाइप की चोरी करते पकडा गया है। प्रबन्धक ने उसे सेवामुक्त कर दिया। वह कमचारी भागा भागा गणेश-शकर विद्यार्थी के पास गया। अपनी भूल की क्षमा माँगते हुए क्षमा याचना की। विद्यार्थीजी ने उसे नीचे से ऊपर तक एक सम्प्रेषणीय दृष्टि से देखा और फिर स्नेहपूर्ण वाणी से बोले, "अपनी आवश्यकताएँ मुझसे से कहते, ऐसा पाप कर्म नही करना चाहिए। भले आदमी, इसमे मेरी नही तुम्हारी ही हानि है, तुम्हारा अध पतन होता है। जाओ भविष्य मे ऐसी गलती मत करना। तुम्हे क्षमा किया।" प्रबन्धक को इस क्षमादान की सूचना मिली तो बडा विस्मित हुआ। वह विद्यार्थीजी के पास आया और बोला, "यह व्यक्ति दूसरी बार चोरी करते पकड़ा गया है। क्या इसे बार-बार क्षमा करने से अव्यवस्था नहीं होगी ?"

"व्यवस्था मनुष्य ने बनाई है मित्र और वह समाज के हित-चिन्तन के लिए बनाई है। एक व्यक्ति को

समाजोपयोगी बनाना अधिक उचित है। कठोर व्यवस्था के नाम पर दडित करके उसे विद्रोही बनाना उचित नही। मुझे आशा है अब वह भूल नही करेगा।" शात स्वर मे गणेशशकर विद्यार्थी ने उत्तर दिया। लोकसग्रही व्यक्ति मे अपार सहिष्णुता चाहिए। गणेशशकर विद्यार्थी कहा करते थे कि एक माँ का हृदय कभी अपने दुर्गुणी पुत्र के लिए भी कठोर नही होता। ऐसा ही लोकसग्रही का हृदय होना चाहिए।

साथ लेकर चलने वाले लोगो के लिए जान भी जोखिम मे डालनी पडे तो उसकी तैयारी रहे, वही हो सकता है सच्चा लोकसग्रही। यह अग्रेजी आतक के जमाने की बात है। विद्यार्थी जी के साथ अनेक कार्यकर्ता रेल मे यात्रा कर रहे थे। उसी डिब्बे मे बैठे कुछ गोरे सैनिको को एक मजाक सूझी। वे कार्यकर्ताओ की काग्रेसी टोपियो को सगीनो की नोक से उतार कर बाहर फेंकते और ठहाका लगाते। कार्यकर्ताओ ने कुछ कहा तो मारने के लिए सगीनें तान ली। आतक के कारण कार्यकर्ता चुपचाप बर्दाश्त करने लगे। दूसरे डिब्बे मे बैठे हुए विद्यार्थीजी के पास जब यह बात पहुँची तो वे भडक उठे। तुरत खडे होकर आस्तीनें चढा ली। लोगो ने बहुत समझाया कि आप उधर मत जाइये, पागल खूनी लोग हैं। लेकिन विद्यार्थीजी नही माने। बोले, "मुझे इन नर-पशुओं का प्रबध करने दो।" वे गोरे सनिकों के सामने डटकर खडे हो गये। उनकी कडी प्रताडणा की। विद्यार्थीजी मे साहस और आत्मविश्वास भरे व्यक्तित्व का ऐसा जादू पडा कि गोरे सैनिक चुपचाप बैठ गए। लोकसग्रही व्यक्ति के लिए महत्त्व गुणों का होता है, भारी-भरकम उपाधियों या पदों का नहीं। विद्यार्थीजी सदैव ऐसे छोटे

से छोटे व्यक्ति का आदर करते थे, जो समाज के लिए उपयोगी हों। इसके विपरीत समाज के लिए निरुपयोगी भारस्वरूप लोगों के लिए उनके मन मे कोई स्थान न था।

एक बार एक सज्जन ने कानपुर से विद्यार्थीजी को लिखा कि मैं पाँच सौ वर्ष से भी अधिक आयु के कुछ सन्यासियो को आपके पास ला रहा हूँ। आप उनके स्वागत की तैयारी करें। विद्यार्थी जी ने तुरन्त वह पत्र रद्दी की टोकरी के हवाले कर दिया। बाद मे वे सज्जन मिले और स्वागत की तयारी न देखकर जब इसका कारण पूछा तब विद्यार्थीजी ने उत्तर दिया, "ये साधु पाँच सौ साल के हो या पाँच हजार साल के—केवल अपने लिए जिये, हमारे समाज के लिए एक भी दिन जिए हो तो बताइये ?"

समाज के लिए तिल तिल जीवनदान करने वाला यह व्यक्ति गुणो का ऐसा आगार था कि उसमे परमाथ के अतिरिक्त स्वार्थ के लिए किसी कोने मे भी कोई स्थान न था। •

12 स्वतत्रता के दीवाने

'किसने फाडा है मेरा कैलेंडर ?" कमरे मे प्रवेश करते ही रूपगर्विता की फटी हुई तस्वीर को कटी देखकर राजगुरु चीख पडा।

"मैंने फाडा है," क्रातिकारी नेता चन्द्रशेखर आजाद ने रोषपूर्वक उत्तर दिया। आजाद को सामने देख राजगुरु का क्रोध जरा पिघला लेकिन वे अशात-से बोले, "हम इतनी सुन्दर तस्वीर लाए और आपने फोड दी, क्या आप हर सुन्दर वस्तु को इसी तरह नष्ट भ्रष्ट कर देंगे ?" "हा, हम कर देंगे।" शेखर

ने आवेश में ही उत्तर दिया।

"क्या आपका वश चले तो आप ताजमहल को भी तोड देंगे ?" राजगुरु ने अब उलाहने के स्वर मे कहा। "हा, मेरा वश चलेगा तो तोड दूंगा।" आजाद आवेश मे कह गये। जब आजाद का क्रोध शात हुआ तो उन्होने राजगुरु को समझाया "हम सिर पर कफन बाँधकर आजादी की लडाई लड रहे हैं। हमे ऐसा कोई काम नही करना चाहिए जो हमारी साधना मे जरा भी व्यवधान डाले।" उन्होने प्रश्न किया, "क्या ऐसे मोहक चित्र हमारे कमरो मे शोभा देते हैं ?" क्रातिकारी देशभक्त भी सामान्य मानव ही थे। उनमे भी कोमल भावनाएँ थी। लेकिन क्रातिकारी नेता आजाद का अपने साथियो से आग्रह था कि स्वातत्र्यदेवी की उपासना करने चले हो तो मन को भी कुदन की तरह तपाना होगा। भावनाओ की भी आहुति देनी पडेगी।

जब भारत के स्वातत्र्य सघर्ष की गाथाएँ इग्लैंड मे आई० सी० एस० की पढाई कर रहे सुभापचन्द्र बोस के कानों तक पहुँचती तो वे बार बार भावुक हो उठते। पढाई मे मन न लगता। एक दिन वे अपने सहपाठी से बोले, "अब बहुत हो चुका, मित्र। मैं अपने 'भविष्य' को सँवारता रहूँ और मेरे देश मे युवक मातभूमि की मुक्ति के लिए प्राण न्योछावर करते रह, यह पौरुप को चुनौती है।' "तुम्हारी भावना सराहनीय है, सुभाप !" सहपाठी ने गम्भीरता से कहा, "लेकिन जरा सोचो, क्या अग्रेज हमारे देशवासियो मे यह प्रचार न करेंगे कि सुभाप भगोडा है, इससे आई० सी० एस० की तैयारी न हो सकी तो यह देश के लिए क्या करेगा ?"

"फिर क्या सुझाव है तुम्हारा ?" सुभाप ने व्यग्रतापूर्वक

पूछा। "तुम आई० सी० एस० की परीक्षा सर्वोच्च अको से उत्तीर्ण करो और फिर इसमे लात मारकर मैदान मे कूद पडो।" सहपाठी ने सुझाया। सुभाष ने अपनी भावनाओ को नियत्रित किया। वे परीक्षा की तैयारी मे जुट गये। आई० सी० एस० की परीक्षा का परिणाम निकला। सुभाष ने प्रथम श्रेणी मे प्रथम स्थान प्राप्त किया था। इस मेधावी छात्र की सारे देश मे धूम मच गयी। अगले ही दिन सुभाष ने घोषणा कर दी, "मैंने आई० सी० एस० मे सर्वोच्च स्थान प्राप्त करके केवल यह दिखाया है कि भारतीयो मे असीम प्रतिभा है, वे गोरो से प्रतिभा मे कम नही। लेकिन मैं अग्रेजो की नौकरी करके मातृभूमि के बधनो को मजबूत नही करूँगा बल्कि उन्हे तोडने के लिए ही काय करूँगा।" सुभाषचन्द्र बोस द्वारा सवश्रेष्ठ प्रतिभा के प्रदशन और सभावित वैभव के सारे आकर्षणो को ठुकरा देने की घोषणा से वे रातोरात विश्वविख्यात हो गये। स्वतन्त्रता के इस नये सेनानी का देश ने बडी गर्मजोशी से अभिनन्दन किया। त्याग का मूल्याकन तभी होता है, जब उच्चतम उपलब्धियाँ अर्जित कर स्वदेश के लिए उनका समर्पण किया जाय।

स्वतन्त्रता के लिए सवस्व अर्पित करने का दृढ सकल्प हो तो दो पगो के पीछे सैकडो पग चल पडते हैं। ऐसे ही एक जन्मजात देशभक्त बालक केशव ने उस दिन नागपुर की अपनी पाठशाला मे सहपाठियो को ललकारा, "हम आज निरीक्षण के लिए आने वाले अग्रेज इस्पेक्टर का 'वन्देमातरम्' के घोष से स्वागत करेंगे।" अग्रेज शिक्षाधिकारी के आते ही 'वन्देमातरम्' के घोष से उसका स्वागत किया गया। अग्रेज शिक्षाधिकारी

'वन्देमातरम्' के घोष को सुनकर गरज उठा—"मैं इस स्कूल को व'द कराऊँगा, सबको कठोर दड दिया जायेगा।" प्राचाय द्वारा छात्रो को समझाने-बुझाने और सारे स्कूल के हित का वास्ता देने से वे क्षमा याचना के लिए तैयार हो गये लेकिन स्वाभिमानी बाल नेता ने गवपूर्वक क्षमा-याचना से इनकार करते हुए कहा, "कैसी क्षमा याचना ? मैंने मातृ व'दना करके कोई अपराध नही किया। मैं फिर से यही घोष करता हूँ।" और पुन वन्देमातरम् का घोष करके वे कक्षा से बाहर आ गये। उ'हे स्कूल से निष्कासित कर दिया गया। बाद मे किशोर सक्ल्प की चिनगारी दावानल बनकर धधक उठी। केशव के इसी सकल्प की दढता मे से काला'तर मे राष्ट्रीय चरित्र निर्माण करने वाले ऐतिहासिक सगठन राष्ट्रीय स्वयसेवक सघ का ज'म हुआ।

स्वात'त्र्यदेवी की उपासना के लिए सवस्व समर्पित करने वाले दीवानो के कदम विचारशू'य आवेश के वशीभूत नही अपितु दढ सयम, साहस और सकल्पद्वारा परिचालित होते हैं। •

13 पहली पराजय

एक महान् भारतीय-सत की ख्याति उस समय आक्रमण कारी नादिरशाह के कानों तक भी पहुँची जब वह दिल्ली मे आराम फरमा रहा था। जनश्रुति यह थी कि सत त्रिकालज्ञ है। नादिरशाह ने सन्त को बुलावा भेजा कि वह उसकी सेवा में पेश हो। लेकिन सत ने साफ इनकार कर दिया कि उसका सुल्तान नादिरशाह से कोई काम नही है, वह चाहे तो मुझसे

मिल सकता है। नादिरशाह ने क्रोध से दाँत पीस लिये, लेकिन फिर भी इस धृष्टता को बर्दाश्त कर सन्त के पास जा पहुँचा। उसने पूछा, "मुझे ऐसा कोई उपाय बताओ जिससे निद्रा पर विजय पा सकूँ ताकि कम-से-कम समय मे सारी दुनिया को जीत लूँ।" निर्भीक सन्त एक क्षण मुसकराया, फिर उसने कहा, "तुम्हारे लिए तो यही उचित है कि तुम्हे दिन-रात नीद आये, ताकि दुनिया अत्याचार से बचे और तुम पाप कर्मों से बचो। इसलिए मेरी सलाह है कि तुम अधिक से अधिक सोओगे तो तुम्हारा और दुनिया दोनो का ही इस मे भला होगा।" बर्बर नादिरशाह के सामने दुनिया सिर झुकाती थी। सन्त के निभयतापूण उत्तर से वह बौखला उठा। उसने कहा, "जानते हो तुम किससे बात कर रहे हो! दुनिया के बादशाह के सामने ऐसी गुस्ताखी करने की तुम्हारी जुर्रत? तुम्हे मालूम है इसकी सजा?" सन्त मुसकराया, "मैं जानता हूँ कि तुम मुझे कुछ दे नही सकते, केवल ले सकते हो और अधिक से अधिक मेरे प्राण ले सकते हो, लेकिन मैं अमर हूँ।" उस समय नादिरशाह को लगा था कि वह पहली बार पराजित हुआ है—वह भी एक फक्कड़ सन्त से।

14 निर्भीकता

नेताजी सुभाषचन्द्र बोस उस दिन जर्मनी मे हिटलर से विचार विमर्श कर रहे थे। भारत को आजाद कराने के लिए वे दुनिया भर के देशो का सहयोग लेना चाहते थे। लेकिन हिटलर अथवा किसी के भी इस प्रस्ताव से सहमत नही थे कि

अपने प्रिय देश पर बमबारी की जाय या एक इंच भूमि भी किसी को दी जाय। परिणामस्वरूप उन्होने हिटलर के प्रस्ताव को ठुकरा दिया और चलने के लिए उद्यत हुए। हिटलर ने उन्हे चेतावनी देते हुए कहा, "हिटलर अस्वीकृति सुनने का अभ्यस्त नही है। जानते हो अब तुम हिटलर के सामने हो, क्या तुम्हे विश्वास है कि तुम मुझे इनकार करके जीवित लौट सकते हो?" सुभाष बाबू का निर्भीक उत्तर था, "दुनिया मे अभी कोई ऐसी जेल नही बनी जो सुभाष को बन्दी रख सके। विशाल ब्रिटिश शासन की आँखो मे धूल झोंककर भारत की सीमाओ को लाँघने वाले को तुम बन्दी नही बना सकते।" सुभाष के आत्मविश्वास, निर्भीकता और अपरिमित तेज का हिटलर पर ऐसा जादू हुआ कि उसने ससम्मान, सुरक्षित अपने देश की सीमाओ के पार सुभाष बाबू को विदा किया।

निर्भयता वह प्रकाश है जो मन के अँधियारे छोरो तक को आलोकित कर देता है, और निर्भय व्यक्ति को मार्ग की कोई बाधा पथ से विचलित नही कर पाती।

15 अजातशत्रु मालवीय जी

महामना मदनमोहन मालवीय की अध्यक्षता मे काशी हिन्दू विश्वविद्यालय की एक बैठक चल रही थी कि अकस्मात एक नाविक क्रोध से कांपता हुआ उनके कक्ष मे घुस आया और मालवीय जी पर गालियो की बौछार करने लगा। बैठक मे उपस्थित सम्भ्रात जन स्तब्ध थे, छात्रगण भी क्रोधावश से क्षुब्ध हो रहे थे कि एक मामूली नाविक महामना मालवीय को

गाली दे रहा है लेकिन वे सब विवश थे क्योंकि कुठार अनुशासन के कारण नाविक को कुछ कह भी नही सकते थे। बात यह थी कि विश्वविद्यालय के कुछ उद्दड छात्रो ने नाविक की नाव को काफी क्षति पहुँचा दी थी इसीलिए यह आगबबूला होकर मालवीय जी को गाली दे रहा था। नाविक गाली देता जा रहा था और मालवीय जी की आँखो से अश्रुधारा बह रही थी—अनजाने अपराध के प्रति घोर पश्चाताप की ग्लानि से विगलित अश्रुधारा। उन्होने क्षुब्ध नाविक के चरण पकड लिये और पश्चाताप भरे स्वर मे कहा, "भाई, लगता है मुझसे तुम्हारा कोई भारी अपराध हो गया है जो तुम इतने क्रुद्ध हो। मेरा अपराध क्षमा कर दो। क्या मैं जान सकता हूँ, मुझसे क्या अपराध हो गया है?" मालवीय जी का यह व्यवहार देखकर नाविक पानी पानी हो गया। उसके मुख मे शब्द न निकल पाये। वह मालवीय जी से लडने की कल्पना लेकर आया था लेकिन लडाई तो तब होती जब मालवीय जी तनिक भी क्रुद्ध हुए होते। वह बडी कठिनाई से छात्रो द्वारा अपनी नाव को पहुँची क्षति की बात कह पाया। मालवीय जी ने प्रेमार्द्र स्वर मे कहा, 'भगवन ! वास्तव मे तुम्हारी बडी क्षति हुई है। ये छात्र तुम्हारे ही पुत्र हैं। इन्हे क्षमा कर दो। नौका सुधरवा दी जायगी।" नाविक आया था गालियाँ देने—बरसा चला अजस्र आशीर्वादो की मधुर धारा। क्रोध को अपने पास न फटकने देने वाले महामानव ही अजातशत्रु होते हैं। बर्बर पशु भी उनके चरण चूमने लगते है। प्रतिकार से कभी क्रोध का शमन नही हुआ, स्नेहसिक्त स्वरधारा से ही क्रोधाग्नि शात होती है।

लेकिन महामना के पथ की प्रचंड बाधा क्रोध पर नियन्त्रण क्या इतना सरल है ? सामान्य स्थिति मे शान्त रहना तो सरल है, किन्तु जटिल और उद्विग्नतापूर्ण परिस्थितियो मे भी क्रोध पर विजय पाना ही सच्ची सफलता है इस दुर्गुण पर।

मानवता की ऊची मजिल की ओर वही कदम सफलता से बढे हैं जिन्होंने अपने व्यक्तित्व को सद्गुण के बढने वाले पथ पर समर्पित कर दिया था। •

16 अद्वितीय सयम

गुरुत्वाकर्षण के आविष्कर्ता महान् वैज्ञानिक सर आइजक न्यूटन उस दिन अनेक वर्षों से तैयार किए हुए अपने शोध पत्रो को मेज पर रखकर कमरे मे वाहर खुली हवा मे निकल आये थे। कार्यपूर्ति की असीम प्रफुल्लता उनके चेहरे पर चमक रही थी। सहसा उनके कुत्ते जैकी को कोई परछाईं-सी दिखाई दी और वह मेज पर उछल पडा। मेज पर जलती मोमबत्ती शोध पत्रो पर गिर पडी। वर्षों की तपस्या से तैयार शोध-पत्र जलकर राख हो गए। न्यूटन ने कमरे मे प्रवेश कर देखा तो स्तब्ध रह गए। एक क्षण के मौन के बाद उन्होंने प्यार से जैकी की पीठ सहलाते हुए कहा, "प्यारे जैकी, तुझे क्या पता कि तूने मेरी वर्षों की मेहनत को राख बना दिया है। खैर चलो, अब फिर से शुरू करते हैं।" कैसा अद्वितीय सयम ! जीवन भर की साधना नष्ट हो गई लेकिन एक पशु पर भी क्रोध नहीं। मानवता के ऐसे ही दीप साधना के दुर्गम पथ को आलोकित किया करते हैं। •

17 करुणा के स्रोत

"वल्लभभाई बरफ से ढँका हुआ ज्वालामुखी है।" सरदार पटेल के लिए यह साथक उक्ति थी स्व० शौकत अली थानवी की। अपनी दृढता और अविचल कर्तव्यनिष्ठा के कारण सरदार पटेल को इतिहास 'लौह-पुरुष' के नाम से स्मरण करता रहेगा लेकिन स्वदेश के लिए सब कुछ समपण करने वाले हृदय मे कठोरता ही नही, करुणा और प्रेम का भी अजस्र स्रोत उमडा करता है। यह करुणा और लोकहित-कामना ही देशभक्तो को कठोर कर्तव्य-पथ के लिए प्रेरित किया करती है।

सरदार भी लोकमगल की इस भावना से ओतप्रोत थे। जुलाई सन् 1927 की अर्द्धरात्रि थी। उस दिन सरदार सो न सके। गुजरात मे भयानक तूफान आया था। पिछले छ दिन से मूसलाधार वर्षा के कारण प्रलयकर बाढ ने अहमदाबाद नगर को घेर लिया था। नगर मे भयकर बेचैनी व्याप्त थी। लोग छतों पर वर्षा मे भीगते हुए इस कालरात्रि मे सहमे बैठे थे। रात्रि के बारह बजे अचानक सरदार के मन में एक सकल्प जाग उठा। साय-साय करती तेज हवा और मूसलाधार वर्षा को चीरते सरदार घर से निकल पडे। सहसा उन्होंने इस अर्द्ध-रात्रि मे एक द्वार पर दस्तक दी। गृहस्वामी ने चकित होकर पूछा, "इस समय कौन है ?" "मै वल्लभभाई पटेल।" सरदार ने उत्तर दिया। "आप, इस समय? " गृहस्वामी हरिलाल कापडिया ने आश्चय प्रकट किया। "अधिक समय नही, जल्दी मेरे साथ चलो। शहर को यथासभव बचाना है।" सरदार ने उद्विग्नता से हरिलाल कापडिया को जल्दी तैयार होने का

निर्देश दिया।

सरदार पटेल कापडिया को लेकर सवेरा होने तक उस वर्षा-तूफान मे घूमते रहे। नगर की स्थिति का सर्वेक्षण करके कमेटी के इजीनियर के घर आए। फिर उसे लेकर जमादारो और मजदूरो को एकत्रित किया। चार दिन तक सरदार इन सहयोगियो को लेकर रात दिन जुटे रहे। उनके कपडे पानी से भीगे रहते। तेज हवा उन्हे थपेडे मारती लेकिन वह अनथक सेनानी की तरह कर्तव्य मे जुटे रहे। आखिर नगर का पानी निकालकर ही दम लिया और अहमदाबाद के लाखो लोगो को सकट से बचा लिया।

लोकमगल की भावना का उदय कठोर हृदय मे नही अपितु सरसता से प्लावित हृदय मे ही हो सकता है। इसीलिए कहा गया है कि महापुरुषो का हृदय जहा वज्र से अधिक कठोर होता है, वही वह कुसुम से अधिक कोमल भी होता है।

छ सौ रियासतो मे बँटे भारत को एक सूत्र मे बाँधने का महान ऐतिहासिक काय करने वाले सरदार मानवीय गुणो और महान मर्यादाओ के मूर्त रूप थे। नेतृत्व के दम्भ अथवा राजनीति की एकता ने कभी उनकी उदात्त मानवता को धूमिल नही किया। विट्ठलभाई पटेल सरदार के बडे भाई थे। राजनीति मे दोनो मे मतभेद रहता किन्तु सामा य व्यवहार मे वल्लभभाई पटेल बडे भाई को राम समान आदर देते थे। सरदार पटेल ने बैरिस्टरी पास करने के लिए लदन जाने का निणय किया था। बडे भाई को पता लगा तो उ होने कहा, "मुझे जाने दो। मेरा आखिरी साल है।" सरदार ने अपने जीवन के महत्त्वपूण निणय को भाई के लिए पल भर मे बदल दिया और

उन्हे लन्दन जाने दिया।

दृढ-प्रतिज्ञ महान लोगो के जीवन का अकसर फौलादी पक्ष इतिहास के सामने आता है लेकिन इस सत्य को भुलाया नही जा सकता कि देश प्रेम और उसके लिए सर्वस्व-समर्पण की भावना का प्रस्फुटन एक संवेदनशील मानवीय हृदय मे ही हो सकता है। इतिहास पुरुष सरदार पटेल के जीवन का यह उदात्त चरित्र ही उनकी सफलता का सोपान था।

18 अनवरत क्रांति का साधक

"अभी तो कुछ भी नही हुआ। स्वातन्त्र्य लक्ष्मी की आराधना के लिए हमे अपने प्राणो की बलि चढानी है, सर्वस्व समर्पण करना है।' बंदीगृह मे वीर सावरकर को जब अपने भाई की गिरफ्तारी का समाचार मिला तब उन्होने यह उद्गार व्यक्त किए और तीसरे बंधु की गिरफ्तारी पर उन्होने कहा, "चलो, इससे ज्यादा गौरव की क्या बात होगी कि हम तीनो भाई ही स्वातन्त्र्य लक्ष्मी की आराधना मे लीन हैं।" सावरकर जीवन्त क्रांति थे स्वयं। उनका रोम रोम, रक्त का प्रत्येक बिन्दु मानो स्वातन्त्र्यदेवी के लिए समर्पित था। भारतीय स्वतन्त्रता के लिए सशस्त्र क्रान्ति की सुनियोजित योजना हेतु सावरकर ने लन्दन मे जाकर विश्व जनमत को हिला दिया था। अनेक पत्रो का प्रकाशन, संस्थाओ का संगठन और सुप्रसिद्ध पुस्तक '1857 का स्वातन्त्र्य समर' लिखकर सावरकर ने पाश्चात्य देशो की धरती पर भारतीय स्वातन्त्र्य का पक्ष उजागर करके अंग्रेजो की नीद हराम कर दी थी। सावरकर

की यह अमर पुस्तक क्रांतिकारियो के लिए 'सशस्त्र क्रांति के तत्त्वज्ञान की गीता' बन गयी थी। इसकी एक एक प्रति तीन तीन सौ रुपये मे बिकी। सावरकर के साहित्य ने आग लगा दी। अंग्रेज अफसरो को धडाधड मौत के घाट उतारा जाने लगा। फ्रांस, जर्मनी आदि देशो मे घूमकर जब पुन सावरकर लन्दन लौटे तो बौखलाई ब्रिटिश सरकार ने उन्हे गिरफ्तार कर लिया। विशाल सशस्त्र पहरे के बीच सावरकर जहाज के केबिन मे बंदी थे। विशाल सागर की विकराल छाती पर जहाज संतरण कर रहा था। क्रांतिवीर सावरकर के सामने प्रश्न था, 'क्या बंदीगृह मे बंद रहकर कर्मवीर विवश हो जाय या मौत का खेल खेलकर मातृ बन्धन काटने के लिए मुक्तिपथ का वरण करे?' कर्मवीर के सामने मार्ग स्पष्ट था। केबिन की छोटी सी खिडकी के शीशे तोडकर विशाल सागर मे कूद पडा। अडतालीस घंटे अनवरत तैरता गया। जहाँ जरा सिर निकला कि सैकडो गोलियो की बौछार। आखिर फ्रांसीसी सीमा के तट पर धोखे से इस वीर को पकड लिया गया। विश्व के सारे प्रमुख समाचारपत्रो ने अगले दिन इस साहसिक घटना को शीर्षक रूप मे छापा। क्रान्तिवीर सावरकर के साहस का विश्वभर मे अभिनन्दन हुआ। जब अंग्रेजी सरकार ने सावरकर को बम्बई की अदालत मे लाकर दो जन्मो के कारावास की सजा सुनाई तो सावरकर ने व्यंग्य से कहा, "मुझे बहुत प्रसन्नता है कि ईसाई सरकार ने मुझे दो जीवन का कारावास दंड देकर पुनर्जन्म के हिन्दू सिद्धान्त को तो मान लिया।"

लेकिन क्रान्ति क्या कभी मरती है? सीखचो के बीच भी

सावरकर ने नुकीले पत्थर के टुकडो से जेल की दीवारो पर 'गोमान्तक' जैसा महाकाव्य और 'वन्दी की आत्मकथा' लिखे और उन्हें कठस्थ करके बाहर आने पर प्रकाशित कराया।

स्वतन्त्र भारत मे सावरकर जब रोग-शैया पर पडे थे तब उन्होने औषधोपचार छोड दिया था। कुछ नेताओं की इस प्रार्थना पर कि आपका जीवन राष्ट्र की सपत्ति है, आप हमे इसके सरक्षण का अधिकार दीजिए, सावरकर ने उत्तर दिया था, "क्या आप फिर एक क्रान्तिकारी भारत के निर्माण मे मुझे सहयोग का वचन देंगे ? तब मैं जीने का सकल्प कर सकता हू।"

'जीवन का अस्तित्व तभी तक है जब तक वह देश और समाज के काम आ सके'—अपने सम्पूण व्यवहार से सावरकर ने इस जीवन-मन्त्र को साकार किया था। •

19 राज्याभिषेक किसके लिए ?

उस दिन हरी भरी फसलो मे यवन सैनिको ने आग लगा दी और ग्रामीणो को लूट लिया। किशोर शिवाजी ने यह देखा तो माँ जीजाबाई से पूछा—"यह यवन सैनिक निर्दयतापूर्वक लोगो पर अत्याचार क्यो करते हैं, माँ ?" "क्योकि देश यवनो का गुलाम है, बेटे !" माँ जीजाबाई ने कहा था। "तो फिर लोग इन्हें मार क्यो नही भगाते ?" शिवाजी ने पूछा था, और माँ इस प्रश्न पर जरा रुक गई थी क्योकि प्रश्न का उत्तर सरल न था। तनिक रुककर जीजाबाई ने कहा था, "गुलामी मे जीते-जीते रक्त मे कायरता भर जाती है, पुत्र ! और तब कोई सकल्प-धनी

नायक ही ऐसी मृतप्राय जाति को जगाया करता है।"
जीजाबाई ने एक क्षण अपने पुत्र को गौरव से निहारा और फिर बोली, 'अब यह कार्य तुम्हें करना है, शिवबा। इन विदेशियों से देश को तुम मुक्त करोगे।" शिवाजी ने आवेश में अपनी नन्ही-सी कटार खींचकर उसी दिन निज रक्त बिन्दुओं से तुलजा माँ का अभिषेक कर प्रतिज्ञा की थी, "जब तक मैं विदेशी आक्रांताओं को भगा नहीं दूंगा, माँ, तब तक चैन न लूगा।'
फिर वह बढ चले लोकसंग्रह के कठिन मार्ग पर। स्वदेश को मुक्त कराने के लिए हजारों साथी चाहिए। दैन्य-दारिद्रय से पीड़ित और दासता के कशाघातों से प्रताड़ित बन्धुओं को घर घर जाकर शिवाजी ने झकझोरा। अनेक हताशा भरे प्रश्नों का समाधान किया। व्यग्य उपहास झेले। विरोधों के झंझावातों से टकराए और तब चल पड़े हजारों कदम उनके पीछे पीछे। सकल्प का पौधा यथार्थ कठोर चट्टान पर अंकुरित होने लगा। "वह देखो सामने— देख रहे हो?" शिवाजी अपने साथियों से कहते और एक के बाद एक किले जीतने लगे। आदिलशाही की नींद हराम हो गयी। कृष्ण के वध की योजनाओं की तरह एक के बाद एक व्यूह रचना कर शिवाजी को समाप्त करने के षड्यन्त्र रचे गये, पर नाकाम रहे। अफजल खाँ आया हो या दिलेर खान बढा हो, शाइस्ता खाँ बढा हो या बहलोल खान, शिवाजी ने सबके दाँत खट्टे कर दिये और एक दिन आया 6 जून, 1677 का वह शुभ प्रभात, जब स्वराज्य-संस्थापक शिवाजी के राज्याभिषेक की तैयारियाँ हुई। लेकिन 'मैं तो स्वराज्य का एक सेवक हूँ। स्वराज्य ईश्वर का है, जनता जनार्दन का है फिर किसका राज्याभिषेक?' कहकर शिवाजी ने अभिषेक

कराने से इनकार कर आचाय गागाभट्ट को चकित कर दिया। आचाय न राज्याभिषेक के लिए नरसहार होते देखे थे। इधर स्वबाहुबल से स्वराज्य स्थापित करने पर भी शिवाजी का यह उत्सर्ग भाव। बडी मुश्किल से देश हित की दुहाई देकर उन्हे राज्याभिषेक के लिए राजी किया जा सका। स्वराज्य-सस्थापक शिवाजी क्या भूल पाये कि उनका लक्ष्य राज्य पाना नही अपितु आदिलशाही से लेकर मुगलशाही तक फैले विशाल भारत की दासता से पीडित हिन्दू जनता को मुक्त कराना है? महान लक्ष्य के लिए शत्रुओं को चुनौती देते हुए, मित्रो से कदम मिलाकर, भटको को पुन पथ दिखलाकर वे बढते ही रहे। कभी भी इस साहसी जननायक ने विश्राम न जाना, लेकिन जब अपने ही पुत्र शम्भाजी के विलासी जीवन के समाचार मिले तो वे समर्थ गुरु रामदास के सामने जाकर व्यथा से द्रवित हो गए। अर्जुन के समान उस समय शिवाजी ने कहा, "गुरुदेव, मुझे राज्य की कामना नही है। यह आपको समर्पित। मेरा कार्य अब पूरा हुआ, गुरुदेव!" चट्टान जैसे वीर पुरुष के चेहरे पर विषाद का कारण समझते उन्हें देर न लगी। स्वदेश के लिए तिल-तिल जलने वाले वीर पुरुष का पुत्र ही उस साधना को खडित करे, तो क्या दुख न होगा? समर्थ गुरु की एक दिव्य दृष्टि और एक शब्द ने उन्हें फिर से कर्तव्य माग पर चलने की प्रेरणा दी।

"निष्काम कर्म करना ही आपका धर्म है। यदि एक पुत्र अयोग्य हुआ तो क्या, इस राष्ट्र के अनेक पुत्र तैयार हैं, आप धर्म-सरक्षण के काय मे बढ चले।" •

20 · विरोध के लिए कृतज्ञता

उन दिनो महर्षि दयानन्द सरस्वती पूना मे ठहरे हुए थे। उनकी विद्वत्ता और वाग्मिता की ख्याति पख लगाकर फैल रही थी। प्रसिद्ध सामाजिक नेता न्यायमूर्ति महादेव गोविन्द रानडे ने निश्चय किया कि लोकमगल और राष्ट्र उत्थान के लिए कार्य करने वाले ऐसे सत का भव्य स्वागत किया जाना चाहिए। उन्होंने अपने सहयोगियो से विचार-विमश कर दूसरे दिन प्रात महर्षि दयानन्द के सम्मान मे भव्य जुलूस निकालने का निश्चय किया, किन्तु कुछ विपथगामी विरोधियो को जैसे ही यह बात मालूम हुई तो उन्होने जुलूस पर आक्रमण करने और महर्षि का भरपूर अपमान करने का निश्चय किया। विरोधियो ने एक गधे को सजाकर कुछ गुण्डो के सरक्षण मे एक जुलूस निकाला। न्यायमूर्ति रानडे ने सुरक्षार्थ पुलिस-दल को जुलूस के साथ रखने की व्यवस्था कर ली थी। महर्षि दयानन्द के भाषण के उपरान्त पूना से अतिम विदाई के रूप में उन्हें हाथी पर बैठाकर जुलूस निकलने ही वाला था कि दूसरे पक्ष के शरारती तत्त्वो ने समारोह में घुसकर शोर मचाना शुरू कर दिया। महर्षि दयानन्द जी को जान-बूझकर इस स्थिति की सभावना बताई नही गयी थी। आशा की गई थी कि पुलिस-दल के रहते गडबड होगी नही। उधर शरारती तत्त्वों की योजना थी कि पुलिस दल के रहते वे आक्रमण करेंगे और पुलिस के द्वारा हस्तक्षेप होने से महर्षि की अधिक बदनामी होगी। उनकी छवि अराजकता फैलाने वाले सत की बन जायेगी और विरोधियों का उद्देश्य सफल हो जायेगा।

उधर स्वामी दयानन्द ने जैसे ही देखा कि जुलूस मे बाधाये डाली जा रही है, उन्होने तुरन्त रानडे को बुलाया और कहा कि पुलिस तब तक कोई कार्यवाही न करे, जब तक हम ऐसा करने का निर्देश न दें, चाहे जुलूस मे कैसी भी गडबडी [illegible] जुलूस बढता रहा। विरोधी गुट चकित और निराश था कि उनके द्वारा उत्तेजित किये जाने पर भी सब लोग शात बने हुए है। यह देखकर उनकी निराशा क्रोध मे बदल गई। उन्होने अब जुलूस पर जो भी चीजे हाथ लगी, फेंकनी शुरू कर दी। जिसके हाथ मे कुछ नही था, उसने नालियो मे से कीचड उठाकर फेंकना शुरू किया। जुलूस पर दनादन कीचड पत्थर बरस रहे थे और इसमे शामिल सभी लोग स्वामी दयानन्द और श्री रानडे के निर्देश से शात चले जा रहे थे। उनके चेहरो पर कोई प्रतिक्रिया नही थी। पुलिस दल मे भी भक्तजन लोग थे। वे इन हरकतो पर क्रुद्ध होते हुए भी विवश मौन थे, क्योकि उन्हे स्वामीजी की ओर से निर्देश था कि वे कोई प्रतिरोध नही करेंगे, सिर्फ जुलूस के साथ शोभा के लिए रहेंगे। कुछ लोगो को चोटें आयी, अस्पताल जाना पडा। जुलूस अन्ततोगत्वा अपने गन्तव्य स्थान पर पहुँच गया तो महर्षिजी ने श्री रानडे से मुसकराकर पूछा, "जुलूस का पुरस्कार कैसा लगा ?" श्री रानडे ने विनम्रता से उत्तर दिया, "आशा से अधिक अच्छा रहा ऋषिवर, और ऐसा आपके अहिंसक सत्याग्रही स्वरूप के कारण हो सका।" सारे पूना मे विरोधी लाछित हुए। उन तथाकथित विद्वानो का मिथ्या अहकार धूल मे मिल गया, जो इस षड्यन्त्र के सूत्रधार थे। श्री रानडे ने कहा —"अविचल शाति और सहिष्णुता की कीर्ति [illegible] अधिक [illegible] से फैलेगी। विरोधियो के इस सहयोग के लिए हमें कृतज्ञ होना।

चाहिए।"

महर्षि ने गम्भीरता से कहा, "सत्य मे स्वय एक तेज होता है, विरोधो के ववडर उसे सान देकर अधिक चमकाते ही हैं। शत यही है कि सत्य-साधक कसौटी की कठोर परख को मुसकराते हुए स्वीकार करें।"

21 · लोक-रा्ग्राहक की दृष्टि

सैनिक गृहद्वार पर खडी महिला को देख घर मे घुस आया और उपहास करने लगा। गृहपति गोपालराव काले ने उसे फटकारा, 'शिवाजी के सैनिक होकर भी तुम सभ्य आचरण नही जानते? उन्हे कलकित करते हो?" मदाध सैनिक को यह उपदेश अच्छा न लगा। उसने गोपाल काले को मार डालने की धमकी दी। काले अब और अधिक सहन न कर सका। उसने सैनिक को कमरे से पकड घर से बाहर लाकर सडक के दूसरी ओर नीचे घाटी मे फेंक दिया।

दूसरे दिन प्रात काल सैनिक परेड के समय उस सैनिक को अनुपस्थित पाकर उसकी खोज हुई। काफी खोजबीन करने पर गदन टूटा हुआ उसका मृत शरीर घाटी मे पडा मिला। सभी सैनिक चकित थे कि यह कैसे हुआ? किसका दुस्साहस हुआ, जिसने महाराज शिवाजी के सैनिक के प्राण लिये? शिवाजी तक खबर पहुँची तो उनके क्रोध की सीमा न रही। उन्होने उस गाँव के प्रत्येक व्यक्ति को अपने सम्मुख उपस्थित होने का आदेश दिया। शीघ्र ही उस ग्राम के सभी लोग शिवाजी के सम्मुख एकत्रित हो गए। शिवाजी ने क्रोध से गरजते हुए ग्रामवासियो

से सैनिक के हत्यारे को पेश करने को कहा। गोपाल काले निर्भीकतापूर्वक आगे बढा और जनसमूह से बाहर आकर सारी घटना सुनाते हुए कहा, "महाराज, सैनिक की भ्रष्ट चरित्रता और उद्दड व्यवहार मुझसे सहन न हुआ, इसलिए मैंने उसे मारा। आप मुझे जो दड दें, मैं उसके लिए तैयार हू।' उसने एक क्षण रुक-कर कहा—' लेकिन एक प्रार्थना है महाराज, ऐसे सैनिको से सेना को बचाए रखें ताकि वे अपने भ्रष्ट आचरण से आपकी पवित्र सेना को कलकित न कर पाएँ।"

शिवाजी गोपाल काले की निर्भीकता और सत्यप्रियता से प्रस न होकर मच से उतरे और उसे सीने से लगाते हुए बोले, "तुम जैसे शुद्ध हृदय और निर्भीक युवको की ही तो मुझे आवश्यकता है, क्या तुम मेरी सेना मे प्रविष्ट होना पसद करोगे?" गोपाल काले ने शिवाजी के बारे मे जैसा सुना था वैसा ही पाया—एक महान पुरुष। वह उनके चरणों मे नतमस्तक होते हुए बोला, "यह मेरा सौभाग्य होगा महाराज कि देशोद्धार के लिए सेवारत आप समान महापुरुष की सेवा मे रहकर मैं भी अपना जीवन सफल बना पाऊ, मुझे आपका आदेश सहर्ष स्वीकार है।" शिवाजी की पारदर्शी लोकसग्रही दृष्टि के कारण ऐसे कितने ही शूरवीर स्वतत्रता-पथ के सेनानी बनते चले गए। ०

22 प्रेरणा के अजस्र स्रोत

"बौद्ध सूत्र ग्रथ केवल चीनी लिपि मे उपलब्ध है।" आचार्य तेत्सुजेन के एक शिष्य ने कहा, "क्यो न इन्हे जापानी लिपि मे मुद्रित करा लिया जाय?" 'ठीक है," आचार्य तेत्सुजेन ने कहा,

"लेकिन इसके लिए असीम धन की आवश्यकता होगी।" और उसी दिन से तेत्सुजेन इस काय के लिए धन सग्रह करने मे जुट गये। शिष्य मण्डली के साथ इस महान काय के लिए धन सग्रह करने मे उसे दस वर्ष लग गये। उसने घोषणा की कि वह ऐतिहासिक क्षण आ पहुँचा है जब बौद्ध सून ग्रथो का जापानी भाषा तर घर घर पहुँचाया जा सकेगा। "इससे बढकर वया सुकम होगा आचाय कि ज्ञान के दीपक को हर घर तक पहुँचाया जा सके।" एक शिष्य ने कहा। आचाय तेत्सुजेन के मुखमण्डल पर भी चरम सतोष की रेखा उभर आयी। सहसा समाचार मिला कि जापान की विशाल नदी यूजी मे बाढ आ गयी है। जन जीवन अस्तव्यस्त हो गया है। पीडित जनो का सर्वस्व बाढ की भेट चढ गया है और वे बेघरबार हो छटपटा रहे हैं। सत तेत्सुजेन का हृदय वन्धुओ की पीडा से सवेदित हो उठा। उसने सारा सचित धन बाढ-पीडित वन्धुओ की रक्षार्थ उनकी सेवा मे लगा दिया।

शिष्य गण कुछ बोले तो नही किन्तु मर्माहत हो उठे कि अब सूत्र ग्रथो के भाषान्तर का महान काय कैसे पूरा होगा। फिर से सब मिलकर धन-सग्रह मे जुट गये। दस वष मे फिर इतना धन जुट पाया, किन्तु इस बार भयकर महामारी फैली और तेत्सुजेन ने सारा धन सेवा काय मे व्यय कर दिया। आखिर एक शिष्य ने पूछ ही लिया, "आचार्य, वया इस प्रकार कभी सून भाषान्तर का काय पूरा हो सकेगा ?" सत तेत्सुजेन गम्भीर हो गये। वोले 'तुम कितने भ्रम मे हो शिष्यगण। जिन्हे ज्ञान-रश्मियाँ बाटने के लिए हम बौद्ध सूत्रो का भाषान्तर करने का सकल्प लिये हुए हैं, उन्ही की रक्षा के लिए यदि सहस्र बार भी यह धन खच करना पडे

तो यह हमारा परम कर्तव्य है। हमारे सम्मुख साध्य तो जापानी व धुओ की सेवा ही है न, बौद्ध सूत्र का भाषान्तर तो केवल साधन है।" शिष्यो को कर्म का मर्म समझ मे आ चुका था। वे दुगुने उत्साह से फिर धन सग्रह मे जुट गये। धूमधाम से एक उत्सव मनाया गया, जापानी जनता ने आचार्य तेत्सुजेन का हार्दिक स्वागत किया। आखिर उन्होने चालीस वर्ष की साधना के पश्चात् बौद्ध सूत्रो के जापानी भाषान्तर के रूप मे जन जन को ज्ञान का दीपक थमाया था।

अपने अभिनन्दन का उत्तर देते हुए उस दिन आचार्य तेत्सुजेन ने कहा था—"दरअसल सेवा के रूप मे पीडित वन्धुओ के लिए किए गए कार्य के रूप मे पहले दो 'सस्करण' अधिक सुन्दर कि‍न्तु अदृश्य थे—वे अतुलनीय है।" निश्चय ही उनका यह कथन सही था। आज भी जापान मे बौद्ध सूत्रो के भाषान्तर की कथा मे आचार्य तेत्सुजेन की यह त्याग कथा स्मरणीय वनी हुई है और जापानी लोग अपने बच्चो को वताया करते है कि सेवा के रूप मे समर्पित दो अदृश्य सस्करण अधिक सुन्दर है, क्योकि वे कर्म प्रेरणा के अजस्र स्रोत वने रहेगे। •

23 ताकि मशाल जलती रहे

जेल के सीखचो मे वन्द उस कैदी को देखकर जेलर भी हतप्रभ था। कटे हुए दाहिने हाथ की अक्षमता के वावजूद अद्भुत जीवट था उसमे। अकल्पनीय यातनाओ से भी न वह टूटा और न हताश हुआ। जेलर आता और हसते हुए प्रश्न करता—"सूफी, अभी तक तुम जि‍न्दा हो ?" और वह इस सत पुरुष की अदम्य शक्ति

को देखकर चकित रह जाता। सूफी अम्बाप्रसाद वास्तव में सन्त
थे और हृदय से भी देश की स्वतन्त्रता के लिए अगाध निष्ठा से जुटे हुए
थे। उन्होंने अपनी लेखनी द्वारा अंग्रेजी सरकार के विनाश की
आग उगली थी। इसलिए 1906 में जेल-अवधि पूरी होते ही
अंग्रेजी सरकार ने फिर से इस विद्रोही को सीखचों में बन्द करने
की ठानी। इधर सूफी को पता चला कि भोपाल रियासत को
अंग्रेजी रेजिडेंट गड़बड़ करके हड़पने की साजिश रच रहा है।
सूफी एक प्रखर पत्रकार थे। उस समय अमृत बाजार पत्रिका से
उनका सम्बन्ध था। उन्होंने निश्चय किया कि षड्यन्त्र को विफल
करना है। एक मित्र ने पूछा, 'आप कैसे रेजिडेंट के रहस्यों का पता
लगायेंगे ? सूफी ने सरलता से उत्तर दिया—'मैं किसी तरह से
रेजिडेंट के बंगले पर नौकरी प्राप्त कर उसके बर्तन मांजूंगा, खाना
पकाऊँगा।' आप यह सब करेंगे, सूफी साहब ?' आश्चर्य से मित्र
ने पूछा। दरअसल सूफी अम्बाप्रसाद इतने पहुँचे हुए सूफी थे कि
उनके अनेक श्रद्धालु भक्त उनके चरण छूकर उनकी अनेक प्रकार
से सेवा करते थे। लेकिन वे देश की स्वतन्त्रता के लिए तुच्छतम कार्य
करने को तैयार रहते। वे पागल-से व्यक्ति के रूप में रेजिडेंट के
बंगले पर गये और उन्हें भोजन मात्र के बदले बरतन साफ
करने का काम मिल गया। उधर अमृत बाजार पत्रिका में उक्त
रेजिडेंट के विरुद्ध धड़ाधड़ लेख छपने लगे और वह इतना बदनाम
हो गया कि उसे पदच्युत कर दिया गया। जिस समय वह
रियासत से विदाई लेकर स्टेशन पर पहुँचा तो उससे एक काला
व्यक्ति सूट-बूट में मिलने पहुँचा। उसे देखकर रेजिडेंट चकित
रह गया और बोला, "अरे, तुम तो वही व्यक्ति हो जो मेरे बंगले
पर बरतन साफ करते थे। आज तो तुम पागल नहीं हो कहीं

तुम ।'

"आपने ठीक पहचाना है।" सूफी ने बात काटते हुए कहा, "मैं वही गुप्तचर हू, जिसने तुम्हारे भ्रष्टाचार का सारा रहस्य प्रकाशित करवाकर तुम्हें पदच्युत कराया है। अब मुझे इस सफलता के लिए इनाम देंगे।"

रेजिडेंट क्रोध से कांप उठा, बोला—"यदि उस समय मुझे पता चल जाता तो तुम्हारी बोटी-बोटी उडवा देता। खैर, तुम्हारी सफलता के लिए बधाई और यह पुरस्कार!" कहते हुए रेजिडेंट ने अपनी कीमती कलाई घडी उन्हें भेंट कर दी और फिर प्रस्ताव रखा, "यदि तुम स्वीकार करो तो जासूस विभाग से एक हजार रुपये मासिक वेतन पर तुम्हे सरकारी सेवा मे नियुक्त करा दू?" सूफी ने गर्वपूर्वक उत्तर दिया,'श्रीमान्, यदि मुझे वेतन ही लेना होता तो तुम्हारे जूठे बर्तन क्यो साफ करता?" उन्होंने एक क्षण रेजिडेंट की ओर देखा और यह कहते हुए चल दिये, 'मैं चलता हूँ। अंग्रेजी राज की किसी दूसरी शाख को गिराने की योजना बनानी होगी।" अंग्रेज अधिकारी विस्फारित नेत्रों से इस क्रांतिकारी को देखता रह गया।

स्वदेश की स्वतन्त्रता के लिए तुच्छतम कार्य करने की सिद्धता रखने वाले सूफी सन्त अम्बाप्रसाद जैसे क्रांतिकारियो के कारण ही स्वाधीनता की वह मशाल सतत जलती रही। •

24 समता के लिए समर्पण

यज्ञ का दिव्य वातावरण था।

तपस्वी सन्त पांचलेगावकर महाराज की अमृतवाणी के

पश्चात महिलाओ ने एक दूसरे को कुमकुम तिलक लगाया। किन्तु एक ओर बैठी कुछ महिलाओ की उपक्षा कर दी गयी। उनका मन असन्तोष से भर उठा।

श्रम तपस्या, यज्ञ के आयोजक मानवीय सद्भाव और श्रम-उपासना के इस यज्ञ का प्रतिफल जानने के लिए जन-जन से सम्पक करें—ऐसा सत पाचलेगावकर का आदेश था। पूना की इस मानव कल्याणी सस्था के दिशा दशर्क सत ने अपने अनुयायियो और सहयोगियो से कहा, "यज्ञ की सफलता किसी दैवी वरदान से नही, बल्कि धरती पुत्रो के हृदयो की समरसता मे से ही प्रकट होगी। इसलिए उनके हृदयो मे झाँककर देखो कि यज्ञमय कल्याणी भावना उन्हे एकत्व के सूत्र मे बाँध रही है अथवा नही।"

अत यज्ञ के दैनिक कायक्रम के पश्चात् एक आयोजक ने जो एक हरिजन परिवार के साथ ठहरे थे, उनसे यज्ञ के बारे मे पूछा।

"अच्छा है, लेकिन वह हमारे लिए नही है, हमारा उससे कोई वास्ता नही।" एक कटुतापूर्ण उत्तर मिला।

"क्यो ?" आयोजक ने व्यग्रभाव से पूछा, "इस सामूहिक श्रम से जो एक सडक बन रही है, उससे तो लाभ हरिजनो को भी होगा ?"

कुछ देर मौन छाया रहा, फिर एक वृद्धा फूट पडी— "आज शाम ऊँची जाति की स्त्रियो ने आपस मे ही तिलक लगाया। हम हरिजन स्त्रियो को कोई परवाह ही नहीं की। जब हमें वे मनुष्य समझने को भी तयार नही तो ऐसे यज्ञ से हमे क्या लाभ ?"

सत पाचलेगावकर को यह बात बताई गई। वे मर्माहत हो उठे। 'जब तक उच्चता के अह की दीवारें नही गिरेंगी, समता की भूमि पर सब एक साथ खडे नही होगे, तब तक यज्ञ का कोई अथ नही है'—उन्होने सोचा।

दूसरे दिन प्रात वह गाँव के प्रत्येक हरिजन के घर मे गए। उन्होने हरिजनो के प्रत्येक घर को गोबर से स्वय लीपा और महिलाओ को फिर कुमकुम लगाया। सत के निर्मल व्यवहार से हरिजन महिलाओ की सारी मनोव्यथा घुल गयी। दूरी की दीवारें भरभराकर गिर गयी। सवर्ण महिलाओ ने भी अपनी भूल को पहचाना। समरसता का जो अमृत लम्बे प्रवचनो से नही उपजा था, वह सन के निमल और समर्पित व्यवहार से सबको सराबोर कर गया।

25 हरिजन तो मुक्ति न मागे

युवा इजीनियर ने पूछा, "तुम्हारा सबसे छोटा भाई कहाँ है?" बच्चो ने निर्जीव दृष्टि से प्रश्नकर्ता की ओर देखा और सपाट स्वर मे उत्तर दिया, "हमने उसे गड्ढा खोदकर मिट्टी मे दवा दिया, वह हमसे सँभलता ही न था।"

युवक इजीनियर अमृतलाल ठक्कर की आँखो से अविरल अश्रु बह चले, "ओह! भारत की ये अभागी सतानें।" उनकी मर्माहत व्यथा उमड पडी। इस दारुण घटना ने युवक अमृत लाल के हृदय को झकझोर दिया। सपूण काठियावाड पर उस समय अकाल की काली छाया मँडरा रही थी। पेट भरने के लिए पेडो के पत्ते भी खत्म हो चुके थे। जहाँ-तहाँ भूख से मृत

लोगो की लाशें पडी दिखाई देती थी। पोरबन्दर मे नियुक्त इजीनियर अमृतलाल ने दो दिन पूर्व ही इन बच्चो के श्रमिक माता पिता को अकाल की भूख से तडपकर मरते देखा था—पीछे बच रहे थे दो किशोर और एक-दो महीने का उनका नन्हा भाई। भला बच्चे कैसे इस शिशु को सँभाल पाते ! उन्होने शिशु को जिन्दा ही जमीन मे गाडकर अपना सिरदर्द खत्म किया। अमृतलाल पर इस हृदयस्पर्शी घटना का गम्भीर प्रभाव पडा। उन्होने अपनी डायरी मे लिखा, "जिस देश की सन्तानें भूख और अकाल की पीडा से कीट-पतगो के समान दम तोड रही हो, नन्हे बालक नालियो मे बीनकर अन्नकण बटोर रहे हो, यदि विधर्मी तत्त्व सेवा-भाव से नही, धर्म-परिवर्तन की भावना से उन्हें फुसला सकें तो आश्चर्य ही क्या है।" उनकी व्यथा घनीभूत हो उठी। उसमे से एक सकल्प उभरा, "करोडो दीन दुखी, अभावग्रस्त बन्धुओ के लिए मुझे अपनी सीमाएँ तोडनी होगी। परिवार की परिधि मे बँधे रहकर यह सेवा-कार्य असभव है।" अमृतलाल ठक्कर ने सारे बन्धन तोडकर आजीवन सेवा का सकल्प धारण कर लिया। देश के कोने कोने मे दीन-दुखी, हरिजनो, गिरिजनो की सेवा के लिए घूमने वाले ठक्कर सबके बापा बन गए। उस दिन अकाल पीडितो को अन्न वस्त्र बाँटते वे शकरपुर ग्राम पहुँचे। जैसे ही वह एक झोपडी के द्वार पर अन्न-वस्त्र देने पहुँचे कि महिला ने झट से घास फूस का वह द्वार बन्द कर लिया। बापा ने चकित स्वर मे पूछा, 'क्यो बहन, तुम्हें कुछ अन्न-वस्त्र नही चाहिए? हम तुम्हारी सहायता के लिए आए हैं।"

"मैं घर के बाहर द्वार तक कैसे आ सकती हूँ, बापा !" स्त्री

ने दरवाजे की आड से ही उत्तर दिया, "मेरे पास तन की लाज ढकने को एक वस्त्र भी तो नही—निर्वस्त्र झोपडी की ओट मे बैठी हूँ।"

बापा यह सुन करुणाभिभूत हो उठे। कुछ कपडे अन्दर फेंके, तब वस्त्र पहनकर महिला द्वार तक आ सकी। जो दीनो मे अपना अस्तित्व मिटा दे, वही दीनबन्धु है। दीनबन्धु बापा एक दिन कुछ सहयोगियो के आग्रह से जयपुर गए। एक सहयोगी ने जयपुर के रमणीक दृश्य दिखाते हुए कहा, "बापा, खुसरो ने कश्मीर को देखकर कहा था, यदि धरती पर स्वर्ग है तो यही है, यही है, यही है। क्या जयपुर को देखकर नही लगता कि स्वर्ग यही है?" बापा बोले, "मुझे बस्ती मे ले चलो। तब निर्णय करूँगा।"

बापा ने हरिजन बस्ती का नारकीय जीवन देखा तो उनका हृदय भर आया। बोले, "इसे कहते हो तुम स्वर्ग!" उनकी आखो मे असीम वेदना झलक उठी। रुँधे कठ से बोले, "अगर मुझसे पूछते हो, तो मैं कहूँगा कि अगर पृथ्वी पर कही नरक है, तो यही है, यही है, यही है।" प्रकृतिस्थ होने पर बापा ने सहयोगियो से कहा, "मेरे लिए सुन्दर-असुन्दर की एक ही कसौटी है—यह वह कि वहाँ दलित-पीडित हरिजनो और गिरिजनो को कितना सुख प्राप्त है।" अनवरत वृद्धावस्था तक सेवारत होनेवाले ऐसे बापा दिल्ली के हरिजन निवास मे एक आरामकुर्सी पर लेटे भावविभोर से भजन गा रहे थे—'हरिजन जन तो मुक्ति न मांगे निरखवा नन्दकुमार रे।' सहसा वियोगी हरि ने प्रवेश करते हुए पूछा, "बापा, कहाँ हैं भी आपके नन्दकुमार?" "क्या तुमने नन्दकुमार को नही देखा?" गद्गद

कठ स्वर से बापा बोले, "अरे, हरिजनो, गिरिजनो और दलितो के नग धडग बालक ही तो मेरे नन्दकुमार है।" और बापा फिर वही पक्ति गुनगुना रहे थे, अश्रु बहते जा रहे थे।

दलित पीडितो के इस मसीहा ने सेवा का वह पथ प्रशस्त किया कि बाद मे इस सेवा-पथ पर हजारो लोग बढ चले। बापा के इक्यासीवें जन्म दिवस समारोह पर किसी नेता ने सार्थक ही कहा था, "देवताओ के कल्याण हेतु महर्षि दधीचि ने अपनी अस्थियाँ दी थी और बापा ने दलितोद्धार के लिए अपना प्रत्येक श्वास अर्पित किया है।" •

26 तीर्थयात्रा

"बाबा, क्या आप तीर्थयात्रा पर चलने के लिए तैयार है ?" मथुर बाबू ने रामकृष्ण परमहस से पूछा। रामकृष्ण परमहस बालसुलभ प्रसन्नता से प्रफुल्लित होकर बोले, "अवश्य, मथुर बाबू, मैं तैयार हूँ।" लेकिन दूसरे ही क्षण वे तनिक गम्भीर स्वर में बोले, "मथुर, क्या तीर्थयात्रा के लिए तुम्हारे मन की तैयारी हो चुकी है ?" मथुर बाबू कुछ समझ न पाये, मन की तैयारी से क्या मतलब है बाबा का। रामकृष्ण मुक्त हास्य कर उठे, "अरे, जिसके हृदय मे भक्ति भाव रहता है, वह यदि तीर्थ यात्रा करने जाता है तो उसका भाव और अधिक बढ जाता है और जिसके हृदय मे भक्ति भाव नही, उसे तीर्थयात्रा से कोई लाभ नही होता।' मथुर बाबू चकित हुए। वे काफी समय से 'बाबा' से तीर्थयात्रा पर चलने का आग्रह कर रहे थे। यह उनका भक्ति भाव ही तो था जो उन्हे तीर्थयात्रा के लिए प्रेरित

कर रहा था। फिर बाबा को उनके भक्ति[illegible] में [illegible] वे इसे एक अबूझ पहेली समझकर चुप [illegible] की तैयारी हो गई। तीर्थयात्रा करते हुए [illegible] परमहंस वैद्यनाथ के पास एक गाँव में से गुजरे। वहाँ [illegible] की विपन्नता और दुःख क्लेश देखकर बाबा का हृदय पिघल गया। उनकी आँखों में आँसू भर आए। वे मथुर से बोले, "तू तो रानी माता का कोठीवाल है रे मथुर, इन सब लोगों में से प्रत्येक को एक एक वस्त्र और एक बार भरपेट भोजन तो करा दे। देख तो, माँ के नग्न और भूखे पुत्र कितने विपन्न हैं।" श्री रामकृष्ण की व्यथा नयनों से बरस रही थी। "बाबा, इस तीर्थयात्रा में तो काफी खर्च हो चुका है। और फिर इन लोगों की संख्या बहुत है। इन सबको अन्न-वस्त्र देते चले तो बहुत खर्च हो जाएगा।" मथुर बोला। दीनों के दुख से द्रवित श्री रामकृष्ण ने क्रोधपूर्ण दृष्टि से मथुर की ओर देखा और बोले, "दूर हो, मूर्ख! तेरी काशी को मैं नहीं चलता। चला जा तू, मैं इन्हीं के साथ रहूँगा। इनका कोई नहीं है। इनको छोड़कर मैं कहीं नहीं जाता।" यह कहकर वे एक छोटे बालक के समान उन्हीं लोगों में जाकर हृदय का बाँध तोड़कर रोने लगे। "क्यों रे, यही है तेरी भक्ति?" श्री रामकृष्ण ने मथुर से पूछा, "तीर्थ-दर्शन का अर्थ क्या है, नहीं जानता तू?" उन्होंने दीनों को गले लगाते हुए कहा, "अरे, यही तो हैं मेरे तीर्थदेव, क्या तू इन्हें नहीं पहचानता?" मथुर बाबू सब समझ चुके थे। उन्होंने तुरन्त कलकत्ता से अनाज और कपड़ा मँगाने के लिए आदमी भेजा। जब तक सब कुछ आ न गया, श्री रामकृष्ण वहाँ से हिले नहीं। अन्न वस्त्र आने और निर्धनों को बाँटने के समय श्री

रामकृष्ण एक सरल बालक की तरह तालिया बजा रहे थे। एक एक के निकट जाकर उसे अपने हाथो से खिला रहे थे। प्रसन्नता के आँसू पोछते हुए वे मथुर से बोले, "सफल हुई रे तेरी तीर्थयात्रा, देख न भगवान मिल गए।" मथुर बाबू अब भक्ति का अर्थ समझ चुके थे। निर्धन ग्रामीण टुकुर-टुकुर देख रहे थे। शायद मौन सकेत से एक-दूसरे से कह रहे थे कि हमे आज भगवान के दर्शन हुए हैं। दरिद्र और दरिद्रनारायण का यह अद्भुत मिलन था। "अब चलो काशी।" श्री रामकृष्ण ने आनन्दित होते हुए कहा। मथुर बाबू विनम्र अनुचर की तरह काशी की ओर बढ चले किन्तु वे मन मे सोच रहे थे, 'काशी तो मेरे साथ है। तीर्थरूप रामकृष्ण देव के सान्निध्य से बढकर भला कौन सा तीर्थ ?' उन्होने पश्चाताप से द्रवित अत करण से उमडे अश्रुकण श्रीरामकृष्ण के चरणो मे चढ़ाकर अपने जीवन को तीर्थमय बना लिया। •

27 लक्ष्य के लिए समर्पित जीवन

"नरेन्द्र, तुम्हे घर बार का मोह छोडना ही होगा। दुखित मानवता तुम्हें पुकार रही है, क्या तम उसकी पुकार ठुकरा दोगे ?"

मुसकान से नरेन्द्र को प्रेरित किया और यही नरेन्द्र पीड़ित मानवता के लिए जीवन होम करने चल पडे। लक्ष्य के लिए सर्वस्व समर्पित करने वाले इस महामानव को दुनिया ने विवेकानन्द के रूप मे जाना।

किसी लक्ष्य के लिए समर्पित जीवन न तो संघर्ष को देखता है और न आकर्षणो के सम्मुख झुकता है। लन्दन के एक स्कूल मे एक प्रधानाध्यापिका मिस मारग्रेट नोबल बडे प्यार से बच्चो को पढा रही थी। रंगीन सपने उसकी आँखो मे थे। बाईस वसन्त पार करने वाली यह तरुणी जीवन के सुख-वैभव को आकंठ भोगना चाहती थी कि एक दिन लन्दन की एक सभा मे उसे स्वामी विवेकानन्द के मर्मस्पर्शी प्रवचन की पुकार ने झकझोर दिया। जीवनधारा बदल गयी। विवेकानन्द ने उस सभा में कहा था, "यदि मुझे केवल बीस समर्पित व्यक्ति मिल जाएँ तो भारत का नक्शा बदल सकता हूँ।" "मि० विवेकानन्द, उन्नीस व्यक्ति कहाँ से मिलेंगे, यह तो मैं नहीं कह सकती। लेकिन मैं भारत की सेवा के लिए जीवन समर्पित करती हूँ। आप मुझे अपने साथ ले चलें।" मिस मारग्रेट ने उस सभा मे खडे होकर कहा। भारत मे अनवरत जीवन-भर सेवा करने वाली इस युवती का नाम स्वामीजी ने रखा सिस्टर निवेदिता।

लक्ष्य के लिए समर्पित व्यक्ति जितने उदार और कोमल-हृदय होते हैं, अपनी भावनाओ के प्रति वे उतने ही कठोर भी होते हैं। ऐसे ही भावनामय और लक्ष्य-समर्पित व्यक्ति थे सरदार पटेल। उनके सामने लक्ष्य था समाज और देश की निर्हेतुक सेवा। फांसी के एक मुकदमे की वे पैरवी कर रहे थे, अचानक अदालत मे तार मिला। खोलकर पढा—उसमे उनकी

पत्नी की मृत्यु का दारुण समाचार था। सरदार ने तार मोडकर जेब मे रखा और पूरी लगन से मुकदमे की पैरवी मे फिर जुट गए। बहस खत्म होने पर मित्र वकीलो ने पूछा, "क्या था तार मे ?" "पत्नी की मृत्यु का समाचार।" सरदार बोले, और अब उनका कठावरोध हो चुका था। लेकिन मित्र चकित थे इस महामानव पर। अपने कर्तव्य-भाग मे उन्होने ऐसी दारुण व्यथा की पीडा को भी बाधक नही बनने दिया।

28. एक और दधीचि

"क्या मैं नौकरी के जजाल से छूटकर अपना सारा समय दलितो और दुखियो की सेवा मे लगा सकता हूँ ?" पिता को पत्र लिख कर यह अनुमति माँगनी चाही थी दीनबधु ठक्कर बापा ने। बम्बई की झुग्गी झोपडियो मे रहने वाले पीडितो की नारकीय दशा देखकर ठक्कर बापा का हृदय करुणा से विगलित हो उठा। इसी कारण नौकरी तक छोडकर पिछडे दीनबधुओ की सेवा भावना उनमे जाग उठी थी। पिता के जीवित रहते तो उन्हे नौकरी छोडने की इजाजत नही मिली लेकिन उनकी मृत्यु के तुरत उपरात यह कर्मयोगी सारे बधन तोडकर देश और समाज की सेवा के लिए निकल पडा। सेवा पथ के लिए गोखले जी का सान्निध्य ग्रहण करते हुए उन्होने एक पत्र मे अपने भाइयो को लिखा था, "मैं निश्चयपूर्वक मानने लगा हूँ कि भारत को आज समग्र जीवन अर्पित कर देने वाले सेवको की जरूरत है, फुरसत या सुविधा से काम करने वालो की नही। जब तक आजीवन कार्य करने वाले सेवक भारत को नही

मिलेंगे, तब तक हमारी कोई प्रगति नहीं हो सकेगी। जीवन मे सभी वियोग दुखदायी होते हैं, परन्तु मैं तुम सबको श्रेष्ठ काम करने के लिए छोडकर जा रहा हूँ।"

देश के जिस किसी कोने मे कोई दु:खद प्रसग आता, बापा वही दौडकर पहुँच जाते। उन्हे लगता जैसे देश के प्रत्येक कोने पर पीडित उनका कोई परिवारजन पुकार रहा है। उन दिनो गुजरात के अकाल पीडित अस्थिपिंजर भीलो के लिए ही नही अपितु भूख-प्यास से मरते हुए मूक पशुओ के लिए भी वे देवदूत बनकर आये।

सेवा के अभिनय और सेवा की प्रेरणा मे अन्तर होता है। बापा निर्धनो और दलितो के जीवन मे समरस होकर उनके हर दु:ख दर्द को बाँटने की कोशिश करते और हर समस्या का समाधान ढूँढकर ही चैन लेते। बम्बई महापालिका के भगियो की कर्ज मे डूबी हुई जिन्दगी और लेनदारो की क्रूरता से भी वे मर्माहत हो उठे। उन्होने देखा कि मूल से भी अधिक ब्याज के कारण ये दलित गुलामो का-सा जीवन बिताने को मजबूर किये जा रहे हैं। उनका हृदय देशबन्धुओ की इस दीन दशा पर तडप उठा। जगह-जगह घूमकर उन्होने हरिजनो की ऋण मुक्ति के लिए सहकारी समिति बनाई और इन कर्जों से उन्हें मुक्ति दिलाई।

सेवा और निरन्तर सेवा के लिए उनका तन-मन समर्पित था, लेकिन धन के स्रोत तो बाहर ही थे। अकाल, भीलो मे जागृति और शिक्षा तथा विधर्मी बनने से बचाने के लिए सहायता के लिए अपार धन की आवश्यकता थी। बापा का सकल्प था कि मैं अपने जीवन का प्रत्येक साँस पीडितों के लिए

3

लगा दूगा लेकिन धन ? खर्च बढता जा रहा था इसलिए बापा ने एक बडी मार्मिक अपील करते हुए कहा, "हमारे समाज की ऐसी कुचली हुई जातियो का भविष्य बदलना जरूरी है, जिसके लिए सेवको और धन दोनो की जरूरत है। धनवानो के भडार मे इन गिरी हुई जातियो को सीधा खडे करने के लिए आवश्यक धन सामग्री भरी पडी है। उसमे से थोडी सहायता क्या वे इन पिछडे बन्धुओ के लिए नही दे सकते ?"

जीवन सध्या के अन्तिम वर्षों मे बापा जब काफी दुर्बल दीखने लगे तो अनुयायियो ने प्रार्थना की कि अब आप घूमना-फिरना छोडिए, इस पर बापा सीना तानकर बैठ गए और बोले, "अगर यह सलाह मैं मान लू तो यह विश्राम नही, मेरा अकाल मरण होगा। मैं तो काम करते करते ही मरना चाहता हूँ, खाट पर पडे-पडे नही। शरीर क्षीण होना तो जराधम है, पर मन क्या दुबल हुआ करता है ?" हुआ भी यही। बापा निरन्तर कम करते हुए इस लोक से गये। उनको श्रद्धाजलि देते हुए जहाँ सरदार पटेल ने महान कर्मयोगी कहा था, वही बाबू जगजीवन राम ने पिछडे वर्गों की सेवा के लिए जीवनदान करने के कारण उन्हे आधुनिक युग के दधीचि की सार्थक श्रद्धाजलि अर्पित की थी। •

29 कर्तव्य-पालन का सम्मान

उन दिनो प्रोफेसर गालब्रेथ भारत म अमेरिका के रा[illegible] थे। उन्होने अपनी महिला निजी सचिव को

दोपहर के भोजन के वाद जब वह आराम कर रहे हो, तो किसी भी कारण उन्ह परेशान न किया जाय और न उस समय किसी को मिलने दिया जाय। सचिव सदैव इस आदेश का कठोरता से पालन करती।

एक दिन वाशिगटन से राष्ट्रपति के विशेष सचिव ने दिल्ली दूतावास में फोन किया कि राष्ट्रपति कोई जरूरी बातचीत करना चाहते हैं। "फिलहाल तो असभव है। थोडी देर बाद फोन कीजिये।" प्रोफेसर गालब्रेथ की निजी सचिव ने उत्तर दिया।

उधर से आग्रह हुआ कि बात जरूरी है इसलिए उन्हे सदेश दे दीजिए। राजदूत की निजी सचिव ने विनम्रतापूर्वक कहा, "मुझे आदेश है कि उन्हे दोपहर के भोजन के बाद आराम के समय परेशान न किया जाय, इसलिए इस समय उन्हे नही जगाया जा सकता।"

इस पर वाशिगटन से राष्ट्रपति के सचिव ने फिर अनुरोध किया, "राष्ट्रपति स्वय बातचीत करने के लिए बैठे है और बातचीत इसी समय होना जरूरी है।"

अब भारत मे अमेरिकी राजदूत की निजी सचिव को थोडा आक्रोश आ गया। वह बोली, ' मैं अपने आका की बात सुनूगी, और किसी की नही।"

वाशिगटन मे टेलीफोन से बात करते हुए विशेष सचिव के पास बैठे राष्ट्रपति ने यह सवाद सुना तो वे हर्षविभोर हो उठे। उन्हे ऐसे निष्ठावान कर्मचारी पर गर्व हो आया जो उन (राष्ट्रपति) से भी अधिक महत्त्व अपने निकटस्थ स्वामी के प्रति कर्तव्य पालन को देती है। वह इस महिला की बात पर इतने

खुश हुए कि उन्होने तुरन्त दिल्ली से बुलाकर वाशिंगटन डी० सी० मे—राष्ट्रपति के व्हाइट हाउस मे उसे नियुक्त करने का आदेश दे दिया। राष्ट्रपति का विचार था कि ऐसे निष्ठावान और कर्तव्य परायण कर्मचारी राष्ट्र की उच्चतम सेवा मे रहने चाहिए। सर्वोच्चतम व्यक्ति की परवाह न कर कर्तव्यपालन की निर्भयता का सम्मान ही लोकतंत्र के फूलने फलने की गारंटी है। ऐसी स्थापनाओ को पुरस्कृत करने से ही लोकतन्त्र का रथ विकास की दिशा मे चल पाता है।

30 · दृढ सकल्प की शक्ति

माता पिता की तीव्र जिज्ञासा थी, अपने बालक का भविष्य जानने की। पंडित जी ने बडी निराशा से हाथ देखकर बताया कि बालक के भाग्य मे विद्या नही है। बालक ने पूछा, "महाराज, कहाँ होती है विद्या की रेखा? कृपया मुझे बताएँ।" पंडित जी ने बालक के हाथ मे सकेत से रेखा का स्थान बता दिया। उसी क्षण बालक एक तेज धार वाला चाकू लाया और उसकी नोक से एक गहरी रेखा हथेली पर खीच दी। खून की धारा बह चली। हस्तरेखा पंडित विशेषज्ञ बालक के साहस से चकित हो उठा। उसने बालक के साहस की सराहना करते हुए कहा कि चाकू से तो हाथ पर रेखाएँ नहीं बनाई जा सकती लेकिन दृढ़ सकल्प से यह सभव है कि तुम विद्या प्राप्त कर सको। उस बालक ने उसी क्षण दृढ़ सकल्प की शपथ ली और भाग्य मे विद्या न होने की घोषणा को मिथ्या सिद्ध कर वह एक दिन महान व्याकरणाचार्य बन गया। इस सकल्पवान बालक का नाम

था पाणिनी — विश्व जिन्हे आज सस्कृत के महान् व्याकरणाचार्य के नाम से जानता है।

दृढ सकल्प मे असीम शक्ति होती है। सकल्प के विना अपरिमित साधन और शक्तियाँ बालू के महल के समान नष्ट हो जाती हैं। दृढ सकल्प वह आत्मबल प्रदान करता है कि सफलता का मार्ग स्वय प्रशस्त होता जाता है। दृढ सकल्प के ऐसे ही धनी थे स्वामी रामतीथ। अनेक सघर्षो के बीच पढने वाले छात्र रामतीर्थ ने उस दिन निश्चय किया था कि सूय की प्रथम किरण देखने से पूर्व वह सारे प्रश्न हल कर लेंगे। उन्होने एक नग्न कृपाण अपने सिरहाने रख लिया कि भोर होने के पूर्व सारे प्रश्न हल नही कर पाए तो स्वय को कृपाण से समाप्त कर लेंगे। रामतीथ रातभर परिश्रम करते रहे किन्तु एक प्रश्न हल नही हो सका। आकाश मे सूर्य उदय होने को था। आखिर रामतीथ ने कृपाण की नोक अपनी गरदन पर रखकर दबाई और रक्त की धारा बह चली। उसी क्षण अकस्मात् उन्हें ऐसा लगा मानो अन्तरिक्ष में प्रश्न का कही उत्तर लिखा है। रामतीर्थ ने तुरन्त कृपाण फेंका और उत्तर को लिपिबद्ध कर लिया। अपने सकल्प की शक्ति से उनमे इस शक्ति का उदय हुआ कि यही रामतीर्थ विश्व भर को भारतीय अध्यात्म का स देश देकर उसके गूढ़तम जीवन प्रश्नो को हल कर सके।

विश्व का यह अलौकिक उत्कष, अनेक रहस्यमय आविष्कार और धरती पर ज्ञान का यह विपुल भडार दृढ सकल्पी महापुरुषो की कृति का ही तो प्रतिफल है। लक्ष्य कितना ही दूर हो, बाधाएँ दुर्गम हो, स्थिति जटिल हो और साधन कितने ही अल्प हो, दृढ सकल्पवान व्यक्ति नक्षत्र के तारो को भी धरती

पर लाने के स्वप्न देखा करते हैं।

बालक अब्राहम अमेरिका के एक साधारण किसान का पुत्र था। दोनो समय मुश्किल से उसे दो-दो रोटी मिलती। एक समय की रोटी बचाकर वह होटल पर बेच आता और उस धन को बचाकर पढने के लिए पुस्तकें खरीदता। घर मे प्रकाश नही है तो क्या, निकट के बिजली के खम्भे की रोशनी मे पढ लेता। लेकिन प्रतिदिन अपनी स्कूल की कुर्सी पर 'पी' शब्द लिखना न भूलता। साथी सहपाठियो ने 'पी' शब्द का अर्थ पूछा तो बताया कि मुझे अमेरिका का प्रेसिडेंट बनना है, इस सकल्प को दोहराता हूँ। सहपाठियो ने उसका उपहास किया लेकिन दढ सकल्पवान यही बालक एक दिन अमेरिका के प्रख्यात राष्ट्रपति अब्राहम लिंकन के नाम से विख्यात हुआ। इसी महान राष्ट्रपति को अमेरिका ने फादर अब्राहम की उपाधि से विभूषित किया।

31 कल्पना भी फलती है

जसे ही उस व्यक्ति ने समुद्र की ओर कदम बढाये, 'जरा ठहरिये' के एक स्वर से उसके कदम रुक गये। "मुझे लगता है आप जीवन सग्राम से पराजित हो गये हैं।" रोकने वाले सज्जन हैली वर्टन ने कहा। और मधुर मुसकान के साथ उसे दो डालर तथा अपने पते का कार्ड थमाते हुए बोले, 'कल आप मेरे कार्यालय आ जाइये, मैं आपकी हर सभव सहायता करूँगा।"

'आपकी सहृदयता के लिए धन्यवाद।" कहते हुए उस व्यक्ति ने डालर और पते वाला कार्ड रख लिया। जीवन सग्राम

के आकस्मिक आधात से चोट खाये यह सज्जन थे अमेरिका के प्रख्यात व्यापारी चेस्टरफील्ड। चेस्टरफील्ड को किसी आर्थिक सहायता की आवश्यकता इतनी न थी जितनी एक मृदुल सहानुभूति की और हैलीवर्टन से उन्हे वह सहानुभूति मिली, आवेश के उन क्षणो मे जब वे जीवन का अन्त करने जा रहे थे। आवेश का पल टल गया और चेस्टरफील्ड का जीवन बच गया। हैलीवर्टन के पास जाने का तो कोई प्रश्न ही न था। एक अतराल के बाद चेस्टरफील्ड एक समाचारपत्र मे यह समाचार पढकर चौक उठे—"अपार घाटे के कारण प्रसिद्ध व्यवसायी हैलीवर्टन का फार्म बन्द हो रहा है।" फील्ड को स्मरण आया कि यह तो वही सज्जन हैं जिन्होंने मुझे एक बार समुद्रतट पर मदद करने का वचन दिया था। एक क्षण भी विलम्ब किए बिना वह उठे और वही पते वाला कार्ड लेकर हैलीवर्टन के पास जा पहुँचे। उन्होने हैलीवर्टन के सम्मुख उनके पते वाला कार्ड रख दिया। हैलीवर्टन को अपना वायदा स्मरण आया लेकिन वह व्यथा के साथ बोले, "मित्र, मुझे दु ख है कि तुम जरा देर से आये, और आज स्थिति यह है कि मैं स्वय भारी सकट मे हूँ।"

चेस्टरफील्ड कोरी चेक-बुक हैलीबटन के सम्मुख बढाते हुए बोले, "मित्र, मैं आपसे इस समय कुछ लेने नही आया, अपितु एक ऐसे उदाहरण पुरुष की सेवा करने आया हूँ जो उदारता की खान है।" हैलीवर्टन ने चौंककर आगन्तुक को देखा। इस विचित्र विडम्बना पर वह चकित और विस्मित थे कि जिसकी सहायता के लिए वे आश्वासन भर ही दे पाये थे, वही व्यक्ति आज उनकी सहायता के लिए उपस्थित है।

फील्ड ने पुन आग्रह किया, "इस सकट के समय आपको

जितने धन की आवश्यकता है आप चेक मे निसकोच भर दीजिए।"

सकोचपूर्वक हैलीवटन ने चालीस लाख डालर की राशि लिख दी। "मैं आज तुम्हारी सदाशयता का कुछ भार हल्का कर पाया हूँ, मित्र। तुम्हारी स्वीकृति के लिए धन्यवाद।" कहते हुए चेस्टरफील्ड ने चालीस लाख डालर का चेक हैलीवटन को दे दिया और बिना धन्यवाद की प्रतीक्षा किए हुए चल दिए।

"उदारता की कल्पना मात्र के ये कैसे मधुर फल।" हैलीवर्टन भावावेश मे बडबडा उठे।

32 · निष्काम कर्म ही फलते हैं

उस दिन वर्षा और आधी मे मानो होड लगी हुई थी। वातावरण की इस विक्षुब्धता को कडकडाती हुई बिजली ने और भी दुधप बना दिया था। न्यूयार्क के उस दम्पति को फिलाडलफिया की यह यात्रा इस घोर वर्षा, तूफान और ठडी रात मे बडी त्रासदायी लगी। फिलाडलफिया मे ही रात गुजारने के अलावा इस वर्षा तूफान मे और चारा भी क्या था ? किन्तु पूर्व आरक्षण न होने के कारण वे जिस होटल मे भी गए, उन्हे ठहरने को स्थान न मिला। इसलिए धनाढय विलियम वाल्डोफ के सपन्न जीवन में यह यात्रा कालरात्रि के समान भयानक बनती जा रही थी। उन्होने आशा निराशा के बीच झूलते हुए एक अन्य होटल म प्रवेश किया, लेकिन होटल प्रबधक द्वारा यहा भी 'स्थान नही है' का निराशाजनक उत्तर पाकर वे जैसे ही वापस लौटने को मुडे कि आवाज आयी, "जरा ठहरिये !"

उन्होंने देखा कि एक साधारण बैरे ने उन्हे पुकारा है। दूसरे ही क्षण बैरे ने होटल प्रबन्धक से अनुमति माँगी, "क्या मैं अतिथि को अपने निजी कमरे मे ठहरा सकता हूँ ?"

"मुझे कोई आपत्ति नही है, लेकिन तुम रात कहाँ गुजारोगे ?" प्रबन्धक ने आश्चर्यचकित स्वर मे पूछा। प्रबंधक की अनुमति पाकर उक्त बैरे ने दूसरे प्रश्न का उत्तर देने के बजाय अतिथि से कहा, "यदि आप अन्यथा न समझें तो रात को मेरे कमरे मे विश्राम कर लें। इतनी रात गए अब आपको फिलाडलफिया के किसी होटल मे स्थान मिलेगा भी तो नही।" बैरे ने कहा, "ऐसी वर्षा और ठडी रात मे आप मेरा यह विनम्र प्रस्ताव स्वीकार कर लें।"

धनाढ्य विलियम ने आभार मिश्रित आश्चय से पूछा, "लेकिन रात मे तुम कहाँ आराम करोगे, मेरे दोस्त ?"

बैरा मुसकराया, "मैं बाहर मेज पर सोया रहूँगा। मेरी चिन्ता आप न करें। फिलाडलफिया मे आए एक अतिथि दम्पति को जगह मिलनी ही चाहिए।"

कँपकँपाती ठडी रात मे विलियम वाल्डोफ के सामने इस प्रस्ताव को स्वीकार करने के अलावा कोई दूसरा उपाय न था। प्रात काल होटल से प्रस्थान करते समय विलियम ने आग्रहपूर्वक उक्त बैरे का नाम और पता पूछा। समय के आवर्त मे बैरा जान डेविड इसे भूल गया। लेकिन एक दिन वह अपनी मेज पर एक तार पाकर आश्चर्यचकित हुआ, जिसमे लिखा था कि वह प्रसिद्ध उद्योगपति विलियम वाल्डोफ से तुरन्त मिल ले। साथ मे न्यूयार्क का हवाई टिकट भी था।

जान डेविड तुरन्त न्यूयार्क पहुँचा। उसे आश्चर्य हो रहा था,

यह सब क्या है इतने बड़े उद्योगपति ने उसे कैसे बुलाया—यह स्वप्न है या जीवन की वास्तविकता है। विलियम वाल्डोफ के महल मे पहुँचते ही उसने देखा कि यह तो वही सज्जन हैं, जो उस दिन रात मे उसके होटल मे ठहरे थे। जान डेविड को आश्चय हुआ कि किस बात के लिए इतने बड़े उद्योगपति ने उसे यहाँ बुलाया ?

"सुनो, जान !" विलियम ने उसकी उत्सुकता को समाप्त करते हुए कहा "तुम आज से उस होटल के मैनेजर रहोगे, जो मैंने तुम्हारे लिए ही बनवाया है।"

"लेकिन श्रीमान्, मैं तो एक साधारण बैरा हूँ।' जान डविड ने कहा, "भला मुझे प्रब धक का अनुभव कहा ?'

विलियम मुस्कराये, "मिस्टर डविड तुमसे श्रेष्ठ प्रबन्धक कौन हो सकता है, जो स्वय को सकट मे डालकर अतिथि की देवतुल्य सेवा करने को तत्पर रहता हो।"

डेविड ने कुछ बोलने का प्रयत्न किया ही था कि धनपति विलियम ने रोका, "मिस्टर डेविड, मैंने यह होटल केवल तुम्हारे ही लिए बनवाया है, ताकि निष्ठा और प्रामाणिकता तथा महान सेवा-भावना को ठोकरो मे नही, बल्कि उस शिखर पर स्थान मिल पाए जिसकी वह अधिकारी है। अत तुम इसे स्वीकार करो।"

33 अटल निश्चय

"अब कुछ समय के लिए युद्ध विराम कर पोप से समझौता करना ही उचित होगा।" लोकतन्त्र प्रेमी 'तरुण सघ' के कार्य-

कर्त्ताओ को वठक ने निश्चित किया। अधिकाश सदस्यो ने इस कायरतापूण निणय के पीछे यह तक दिया कि व्यथ लम्बे समय तक पोप से टकराकर शक्ति क्षीण करने के बजाय हमे समझौता करके कुछ समय के लिए शक्ति सचय हेतु युद्ध-विराम कर आत्म-समपण कर देना चाहिए। गैरीबाल्डी इस कायरतापूर्ण निणय से क्षुब्ध हो उठा। उसने कहा, "एक बार हमने शस्त्र रख दिए तो पोप और उसके सहायक हमे पूरी तरह कुचलकर रख देंगे और फिर हमारी स्वतन्त्रता की कल्पना केवल स्वप्न बनकर रह जाएगी।" लेकिन 'तरुण सघ' की उस बैठक मे समझौता-वादी पलायनवादियो के सम्मुख गैरीबाल्डी की एक न चली।

गैरीबाल्डी आक्रोशपूवक उठा। उसने अपने साथ मृत्यु पर्यंत स्वतन्त्रता हेतु लडने वाले सैनिको का आह्वान किया। पाँच हजार सनिक उसके साथ अतिम साँस तक लडने का सकल्प लेकर चल पडे। शत्रुओ को 'तरुण सघ' के विघटन और वीर सेनानी गैरीबाल्डी के अकेले पड जाने का समाचार मिल गया था। उन्होने स्थान स्थान पर सैनिक टुकडियो द्वारा उस पर आक्रमण किए, हर मुठभेड मे गैरीबाल्डी के काफी सैनिक मारे जाते रहे। एक ओर से आस्ट्रियन सेना ने गैरीबाल्डी पर प्रबल वेग से आक्रमण किया। गैरीबाल्डी की सेना छिन्न-विच्छिन्न हो चुकी थी। अब उसके पास केवल नौ सैनिक बचे थे। उसके साथ सैनिक पहरे के बीच उसकी जीवन-सगिनी अनीता थी। गैरीबाल्डी थोडी ही देर मे समुद्र के किनारे खडी नावो पर सवार हो गया।

अब गैरीबाल्डी के साथ उसकी पत्नी अनीता, उसका विश्वस्त साथी कप्तान लेगिओरो और मात्र नौ सैनिक बचे थे।

भूख-प्यास, लम्बे संघर्ष और बीमारी के कारण अनीता जर्जर हो चुकी थी। उसने पति से क्षीण स्वर मे याचना की, "क्या कुछ क्षण कही ठहर नही सकते ?" वज्र साहसी गैरीबाल्डी एक बार सिहर उठा। स्वतन्त्रतादेवी के लिए अपने रक्त की अन्तिम बूंद तक न्यौछावर करने वाला सकल्प-धनी वीर अपनी पत्नी के निष्प्रभ मुख-मण्डल और उस पर खिची गहरी अवसाद की रेखा से विचलित-सा हो उठा। उसने आसपास दृष्टि दौडाई। कुछ दूर एक टापू दिखाई पडा, नावो का रुख उधर मोड दिया गया। थोडी देर बाद वे सब टीले पर थे। गैरीबाल्डी ने अपनी क्लान्त पत्नी को लिटाकर उसके मस्तक पर स्नेह हस्त रखा ही था कि अकस्मात यहाँ भी आस्ट्रियन सेना की शिकारी टुकडी खोज करती आ धमकी। गैरीबाल्डी के इस छोटे से दल पर गोलियो की वर्षा होने लगी। अँधेरे का लाभ उठाकर वह अपनी पत्नी अनीता को लेकर झोपडी की ओर बढा। उसके बचे-खुचे नौ सैनिक भी अपने नेता की रक्षा के लिए लडते हुए शहीद हो गए। रात्रि के समय नीरव स्थान पर एक छोटी-सी झोपडी मे इटली का महान सेनानी अपने अनन्य सहयोगी और रुग्ण पत्नी के साथ बैठा कल के लिए सोच रहा था कि पत्नी ने उखडती साँस के साथ पूछा, "अब क्या करोगे ?" गैरीबाल्डी ने पत्नी का आशय समझते हुए सान्त्वनापूर्वक उत्तर दिया, "अन्तिम दम तक इटली की स्वतन्त्रता के लिए लडता रहूँगा, अनीता।" ये शब्द सुनकर अनीता के मुखमण्डल पर एक बार प्रसन्नता की चमक उभर आयी। दूसरे ही क्षण बुझते दीपक के समान क्षीण स्वर मे उसने कहा, "पानी।" गैरीबाल्डी ने चारो ओर देखा, इससे पूर्व कि वह पानी की व्यवस्था करता, अनीता चिरनिद्रा

मे विलीन हो गई।

"मित्र लेगिओरो !" गैरीबाल्डी ने असीम वेदना को समेटते हुए कहा "अनीता भी हमे छोडकर चली गई।" लेगिओरो को गैरीबाल्डी की इस असीम पीडा का अनुभव हुआ। वह बोला, "यह हमारी कठोरतम परीक्षा है, मित्र ! नियति ने अब तुम्हे इटली की सेवा के लिए पूर्ण बन्धनमुक्त कर दिया है।" सहसा मार्ग मे रात्रि बिताने वाले समीप के किसान ने खबर दी— आस्ट्रियन सैनिक उन्हे खोजते घूम रहे हैं और किसी भी क्षण यहाँ तक पहुँच सकते हैं। आप यहाँ से सुरक्षित स्थान पर चले जायें। गैरीबाल्डी ने कप्तान लेगिओरो की ओर देखा। फिर एक दृष्टि किसान पर डालते हुए बोला, "तो फिर मेरी पत्नी का अन्तिम सस्कार तुम्ही कर देना, मेरे दोस्त। मेरे पास समय बहुत कम है।" गैरीबाल्डी ने ममतापूर्ण दृष्टि से अन्तिम बार पत्नी की मृत देह की ओर निहारा और वह महान स्वतन्त्रता-योद्धा अपने स्वातन्त्र्य युद्ध के लिए फिर आगे बढ चला। •

34 अणु मे छिपा विराट दर्शन

प्रख्यात समाजसेवी एव महान पत्रकार श्री गणेशशकर विद्यार्थी अपने एक सहयोगी के साथ रेल मे यात्रा कर रहे थे। सहसा रात्रि को उठकर उन्होंने देखा कि उक्त सहयोगी के पास पर्याप्त ओढ़ने के वस्त्र नही हैं और वे ठड में सिकुड रहे हैं। विद्यार्थी जी ने अपना कम्बल उन्हें ओढ़ा दिया और स्वय हल्की-सी चादर लेकर सो रहे। प्रात आँख खुलने पर उक्त सहयोगी बन्धु ने देखा कि गणेशशकर विद्यार्थी का कम्बल उनके ऊपर पडा

है और विद्यार्थी जी सर्दी मे सिकुडे पड़े हैं। उन्‍ह नीद तो आयी नही थी, बस लेटे हुए ही थे। उन्होने सहयोगी से पूछा, "कहो, रात को नीद तो ठीक आ गई न ?" उक्त कार्यकर्त्ता ने पूछा, "आप रात भर सर्दी मे ठिठुरते रहे और "

"अरे, कुछ नही।" विद्यार्थी जी बीच मे टोकते हुए बोले, "मुझे तो ऐसे ही रहने की आदत है।" उस क्षण लगा कि कर्तव्य-पथ का वह अडिग हिमालय सहयोगियो के लिए अपने अन्तर मे मोम से भी अधिक तरलता सँजोये है।

छोटी छोटी बातो मे आत्मीयता के व्यवहार की यह झलक विद्वतापूर्ण लम्बे प्रवचनो से अधिक प्रभावी होती है। राष्ट्रीय स्वयसेवक सघ के भूतपूर्व सरसघचालक श्री गुरुजी एक बार कुछ कार्यकर्त्ताओ के साथ एक ग्राम मे पहुँचे तो एक दीन हीन किसान भाव विभोर होकर उनके लिए बडी श्रद्धा से चाय लाया। गुड की वह चाय इतनी काली थी कि उसे औषधियुक्त काढा ही कहा जाना उचित है। श्रद्धापूर्वक किसान ने उसे अपनी महीनो की मैली धोती मे छानना भी उचित समझा। आखिर वह बिना छनी चाय कैसे देता गुरु जी को ! गुरु जी ने बडे प्रेम से अनेकानेक धन्यवाद देते हुए, भरपूर प्रशसा करते हुए चायपान किया, लेकिन अन्य साथियो ने चाय पीने मे असमर्थता प्रकट की। बाद मे गुरु जी से एक सहयात्री कार्यकर्त्ता ने पूछा, "जिस चाय को देखकर भी वमन हो जाय, ऐसी चाय आप इतनी प्रशसा करके कैसे पी गये ?"

गुरु जी ने निश्छल स्नेहपूर्वक उत्तर दिया, "अरे, चाय को क्यो देखते हो, उस असीम श्रद्धाभाव को देखो जिससे प्रेरित होकर उसने तन्मयतापूर्वक वह चाय बनाई और अपने बहुमूल्य

वस्त्र मे छानकर लाया।" और वह अपनी सहज वृत्ति के अनुसार उन्मुक्त रूप से हँस पडे।

स्वामी विवेकानन्द ने इस महानता की ओर सकेत कर कहा था, 'महानता इस बात मे नही है कि ज्ञान का कितना असीम भडार हमने अपने सिर पर लाद लिया है, अपितु इसमे है कि अपने दैनिक जीवन मे मनुष्यत्व का हम कितना आह्वान कर पाये हैं।"

35 जन-जागरण ही कर्तव्य है

"आप मे से कोई भी पुलिस को न रोके न कुछ कहे। मैं स्वय पुलिस के हवाले होता हूँ।" यह आदेश देकर उस दिन पडित दामोदर श्रीपाद सातवलेकर ने गुरुकुल के विद्यार्थियो को रोक लिया। पुलिस ने उनके हाथो मे हथकडियाँ और कमर मे रस्सियाँ जकड दी और सेन्ट्रल जेल मे ले जाकर खूनी कैदियो के वार्ड मे बन्द कर दिया। अपने बचाव मे न्यायाधीश के सम्मुख सातवलेकर ने अदालत मे कहा, "माननीय न्यायमूर्ति, मैं वेदो का पुजारी हूँ। वेदो की आज्ञा है कि यदि देश परतन्त्र हो जाए तो क्षत्रीय को जागत करके देश को परतन्त्रता से मुक्त करना ही सच्चे ब्राह्मण का कर्तव्य है। मैं ब्राह्मण हूँ। आप जो कहते हैं, वह सब मैंने लिखा है। उसे लिखने के बारे मे जो उचित निर्णय हो, उसे खुशी से दें।"

विद्या के लिए सुख-त्याग

वेदो के प्रति ऐसी अनन्य श्रद्धा ने ही पडित सातवलेकर को ज्ञान का यह कटकाकीर्ण पथ अपनाने की प्रेरणा दी थी।

सातवलेकर जी यशस्वी चित्रकार थे और चित्रकला से उन्हे हजारो रुपये की आय होती थी तथा वे राजसी ठाट-बाट से रहते थे। लेकिन परतन्त्रता के उस काल में जब उन्हें लगा कि महान वेदज्ञान के द्वारा ही राष्ट्रीय चेतना जागृत की जा सकती है तो तत्क्षण अपनी जीविका के इस साधन को ठुकराकर उन्होने अपना सर्वस्व वेदज्ञान की साधना मे समर्पित कर दिया। एक बार गुरुकुल कागडी मे प्रोफेसर महेशचरण जी ने सातवलेकर जी से कहा, "पडित जी, अपने एक परिचित का आदमकद चित्र आपसे बनवाना है।" "मैं अब कभी चित्र न बना सकूगा।" पडित जी ने उत्तर दिया। प्रोफेसर महेशचरण ने सोचा कि शायद वे मिलने वाली धनराशि के प्रति शकित हैं इसलिए वे बोले, "पडित जी, आप निश्चिन्त रहिए, मैं आपको पाँच हजार रुपये की राशि दिलवा दूगा।" पडित सातवलेकर मुस्कराये, बोले, "भाई, मैंने तो वेद के लिए सन्यास ले लिया है, इसलिए पाँच हजार क्या, अब मैं पचास हजार के प्रलोभन से भी यह काम नहीं कर सकूगा।"

"कौन कहता है कि आपने सन्यास ले लिया है ? आपने तो गृहस्थियो के वस्त्र पहने हुए हैं ?" प्रोफेसर महेशचरण बोले।

"सन्यास वस्त्रो के रग से नही, मन की भावना से होता है। मैंने वेद के लिए सन्यास लिया है, और सब काम छोड दिए हैं।" पडित जी ने उत्तर दिया। उनके इस उत्तर से आसपास बैठे सभी लोग स्तब्ध रह गये।

कष्ट में सहभाग

अभावों से जूझते हुए भी साधनों का अनुपम परित्याग था यह। वेदों के लिए समर्पित सही अर्थों मे वैदिक पद्धति से जीने

ाला यह महापुरुष अपने व्यक्तित्व को समष्टि मे विलीन कर चुका था। उस समय पडित जी 79 वर्ष के वयोवृद्ध थे। औध मे आयोजित राष्ट्रीय स्वयसेवक सघ के शरद शिविर की एक घटना है। पडित जी शिविर मे उपस्थित थे। अचानक घनघोर वर्षा होने लगी। वर्षा मे भीगते हुए देखकर एक अधिकारी उनसे बोले, "यहाँ वर्षा तेज है इसलिए आप मोटर से बस्ती मे चले जाइये—ये स्वयसेवक पीछे से आते रहेगे।" सुनकर पडित जी बोले, "मेरी नजरो के सामने ये छोटे छोटे किशोर स्वयसेवक पानी मे भीग रहे हैं, फिर भला मै यहाँ से कैसे जा सकता हूँ ? मुझ वृद्ध की चिन्ता आप क्यो करते हैं ? पहले इन सबकी व्यवस्था कर दीजिए। मै भी इन्ही के साथ जाऊँगा।"

आत्मचरित की सार्थकता

जब पडित जी से किसी ने एक बार कहा, "पडितजी, आप महान वैदिक ज्ञान को पुनर्दीप्त कर रहे हैं, इसके लिए आपने अपना जीवन होम दिया है अत अपना एक आत्मचरित तो लिख जाइये ताकि आगामी पीढियो को प्रेरणा मिल सके।" तब पडित जी ने कहा था, "तुम जो कहते हो वह ठीक है, पर मै आत्मचरित लिखने की अपेक्षा मरुत्देव का चरित लिखना अधिक पसन्द करूगा। आत्मचरित लिखने मे जो समय लगेगा, वही समय यदि साहित्य पर खर्च करूँ तो ज्यादा लाभदायक होगा। आत्मचरित अनुपयोगी नही, पर उसके लिए मै अपना अमूल्य समय नष्ट करना नही चाहता।" •

36 मौत की घाटी से संदेश

वह जब सीखचों के बाहर रहा, नाजी अत्याचारों के खिलाफ अपनी कलम से आग उगलता रहा। आखिर नाजियों की पकड़ मे आ ही गया। जूलियस फ्यूसिक—यही नाम था उस महान क्रातिकारी का। विश्व भर मे उसके लेखो की धूम मच गई। वार्डर को एक दिन फ्यूसिक ने कहा, "किसी भी तरह तुम ये कागज बाहर पहुचा दो।" वार्डर ने उसे श्रद्धापूर्वक देखा और कागज बाहर पहुचा दिए। यह क्रम लगातार जारी रहा। ये साधारण कागज नही, जेल मे लिखे गये नाजी अत्याचारो के विरुद्ध विस्फोटक दस्तावेज थे। नाजी सरकार हिल उठी। गैस्टॅपो के मुख्य अधिकारी (नाजी जर्मनी का खुफिया विभाग) के सम्मुख जूलियस फ्यूसिक को पेश किया गया। उसने पूछा, "क्या तुम नही समझ पा रहे थे कि तुम्हारा अ तकाल आ पहुँचा है और तुम इस प्रकार अपना सब कुछ खो रहे हो?"

फ्यूसिक का मस्तक गर्व से ऊँचा हो गया। वह बोला, 'मुझे गौरव है कि मै अकेला ही शहीद हो रहा हूँ क्योकि तुम मेरे अन्य साथियो के बारे मे नहीं जान पाओगे।" 'क्या तुम्हे अभी तक रूसियो की विजय मे विश्वास है?" अधिकारी ने पूछा। "निसदेह।" फ्यूसिक ने उत्तर दिया और फिर प्रारम्भ हुआ असीम यातनाओं का चक्र। फ्यूसिक को हर प्रकार से तोडने की कोशिश की गई। उसे बताया गया कि यातनाओ से उसके कुछ साथी दम तोड चुके हैं और कुछ रहस्य उगल चुके हैं लेकिन फ्यूसिक पर इसका कोई असर न पडा। आखिर नाजी अफसरो को एक तरकीब सूझी। यातनाओ का दौर एकदम बद कर

दिया गया। वे उसे लम्बे और सुविधाजनक भ्रमण पर ले गये ताकि सामान्य जीवन की सुख-सुविधा और स्वतन्त्रता का आनन्द उसमे जीने की लालसा पैदा कर दे और वह अपना निश्चय छोडकर रहस्य उगल दे। किन्तु उसके मस्तिष्क पर इन हथकडो का भी कोई प्रभाव नही पडा। यातना और प्रलोभन—दोनों साधन असफल हो गए। आखिर उसकी पत्नी से सपर्क किया गया। "कम-से कम उसे अपने परिवार के लिए प्रेरणा दो।" गैस्टापो अधिकारी ने कहा, "देखो, उससे कहो कि वह तुम्हारे प्रेम के लिए जीवित रहे। और हाँ, याद रखो, यदि वह इतने पर भी अडा रहा तो तुम दोनो को आज रात गोली मार दी जाएगी।" जूलियस फ्यूसिक की पत्नी ने अधिकारी को शात स्थिर दृष्टि से देखा और बोली, "यह मेरे लिए धमकी नही है श्रीमान, यही तो मेरी अन्तिम इच्छा है कि आप मेरे महान पति को दड दें तो मुझे भी अवश्य दें।" मुलाकात के समय फ्यूसिक ने कहा, "प्रियतमा, ये हमारी जिन्दगी छीन सकते हैं लेकिन हमारे गौरव और प्यार को नही छीन सकते।" आखिर उसे मृत्युदण्ड सुना दिया गया। फाँसी से पूर्व उससे पूछा गया, "क्या तुम्हारी कोई अन्तिम इच्छा है ?" "हा।" फ्यूसिक ने कहा, 'मेरे देशवासियो से कह देना कि मैं मानवता की प्रसन्नता के लिए जिया, उसी की प्रसन्नता के लिए मौत का वरण कर रहा हूँ और यह मेरा अपमान होगा अगर मेरे देशवासियो ने मेरी कब्र पर एक भी आँसू बहाया अथवा शोक का गीत लिखा।"

जूलियस फ्यूसिक आज विश्व भर के क्रान्तिकारियो का आदर्श है। उस महान पत्रकार ने मौत की घाटी मे बैठकर भी 'मौत की घाटी से सदेश' नामक पुस्तक मे वह अमर सन्देश

दिया जिसमे अवसाद का एक भी शब्द नही बल्कि प्रेरणा के अनगिनत स्फुलिंग हैं।

37 राजसत्ता का दायित्व

'मैं निश्चय ही आज प्रधानमंत्री से इस अन्याय का बदला लूगा।" वह बडबडाया और भरा पिस्तौल लेकर उनसे मिलने चल पडा। उसे पता था कि इदौर रियासत के (तत्कालीन) प्रधानमंत्री प्रतिदिन सवेरे नौ से दस बजे तक अपने बगीचे मे जनता की शिकायतें सुनते हैं। "लेकिन शिकायत सुनाने से फायदा ?" उद्विग्नमना नाथूराम झुझलाया, "अब तो इस अन्याय के वृक्ष की जड काटकर ही दम लूगा।" इदौर रियासत के प्रधानमंत्री सिरेमल बापना एक एक व्यक्ति से उसकी दु ख-दद कथा सुन रहे थे। नाथूराम सबसे पीछे खडा अपनी बारी की प्रतीक्षा बेसब्री से कर रहा था। बापना साहब उससे कुछ पूछते, इससे पहले ही उसने पिस्तौल उनकी ओर तान दी। सिरेमल बापना तनिक भी विचलित नही हुए। "तुम मुझे मारना चाहते हो न" वे मुस्कराते हुए बोले, "ठीक है, यह काम तो तुम कभी भी कर सकते हो, म तो हमेशा यही मिलता हूँ। अच्छा हो कि मारने से पहले मेरे योग्य कोई काय हो तो ले लो, फिर जब चाहो मार देना।" यह एक कतव्यनिष्ठ शासक की वाणी थी। नाथूराम उनके व्यवहार से अभिभूत हो उठा। उसके हाथ से रिवाल्वर छूटकर धरती पर आ गिरा।

आँखों से आँसुओ की धारा बहने लगी और पश्चात्ताप से विचलित होकर वह बापना साहब के चरणो मे गिर पडा।

उदार हृदय बापना साहब ने नाथूराम को उठाकर सीने से लगा लिया और धैर्य बँधाकर कहा, "तुम्हे जो तकलीफ है, मुझे सुनाओ।" नाथूराम ने बताया, "पुलिस ने मेरे विरोधियो से मिलकर मुझे बर्बाद कर दिया है। मुझ पर अनेक झूठे मुकदमे चला रखे है। एक से मुक्त होता हू तो दूसरा चला देते है। अब मुझमे इस अन्याय से लडने का शक्ति नही बची है।"

बापना साहब ऐसी घटनाओ से स्वय व्यथित हो जाते थे। उन्होने स्वय प्रत्येक विभाग को निर्देश देकर सारी फाइले निकलवाईं और सब झूठे केस समाप्त कर दिए।

चौदह वर्ष तक इदौर रियासत के प्रधानमत्री रहने वाले इस कर्तव्यपरायण व्यक्ति का सारा समय जनसेवा मे बीतता था और वेतन का अधिकाश भाग जरूरतमद लोगो की सेवा मे ही लग जाता था जबकि ऐसे पद पर रहने वाले सामान्य कार्यकर्त्ता भी आज करोडो रुपये बटोर लेते है। जब उनसे एक हितचिंतक ने कहा, "बापना साहब, कुछ बीमा तो कर दीजिए ताकि भविष्य मे काम आ सके।" तब बापना साहब ने उत्तर दिया, "मेरे बीमा कराने से यदि हमारे प्रजाजनो की सुरक्षा हो सके तो जरूर करूँगा। केवल अपनी सुरक्षा की चिन्ता कैसी ?" और उन्होने बीमा कराने से इनकार कर दिया।

राजसत्ता के भोग मे मदान्ध हो जाना एक आम बात है। बापना जी का मत था कि राजसत्ता का दायित्व सेवा का सबसे बडा किन्तु कठोर दायित्व है। इसलिए उनके पास साधारण चपरासी मिलने आता तो वे उसे अपने सम्मुख कुर्सी पर बिठाते और उसकी व्यथा-कथा सुनते। उन्होने समता के आदर्शों को अपने जीवन मे पूरी तरह साकार किया। कोई भी अतिथि

उनके लिए सामान्य नहीं था, सभी असामान्य और देवतुल्य। एक बार उनके निजी सचिव ने उनके घर ठहरे एक अतिथि को जो राज्य के ही एक क्लर्क थे—उनसे पहले भोजन करा दिया। जब उन्हें यह पता लगा तो उन्होंने सचिव से कहा कि सायंकाल का भोजन वे मेरे साथ करेंगे। अतिथि के पूर्ण सम्मान के लिए ही उन्होंने ऐसा किया।

उनका तन-मन धन प्रजातंत्रों के लिए समर्पित था। किसी व्यथित बेरोजगार युवक ने एक बार उनका द्वार खटखटाया, 'मैं ग्रेजुएट बेकार हूँ। घर में खाने को एक दाना नहीं है। माँ, बहन और भाई मुझ पर ही आश्रित हैं।" उसने अश्रुपूर्ण दृष्टि से बापना जी की ओर देखकर कहा, "मेरे जीवन को बचा लीजिए, मुझे कोई नौकरी तुरन्त दे दीजिए।" बापना साहब ने एक क्षण उसे सरलता से देखा और स्नेह से उसकी पीठ सहलाते हुए बोले, "युवक, जब तक तुम्हारी नौकरी का प्रबंध हो, पचास रुपये मासिक मुझसे ले जाया करो, शीघ्र ही तुम्हारी नौकरी की व्यवस्था भी हो जाएगी।" यह कहते हुए उन्होंने एक लिफाफे में रखकर उसे पचास रुपये दे दिये। इसी प्रकार किसी विधवा, वृद्ध, असहाय जैसे अनेक दीन जनों की पेंशन उन्होंने अपने वेतन में से बाँध रखी थी। काश, आज स्वतन्त्र भारत की राजनीति में यदि सिरेमल बापना जैसे वरद् पुत्र सक्रिय होते तो इस विकृत राजनीति में कितना सुधार होता!

38 देवत्व के सोपान

'अगर आपको कोई चिट्ठी अंग्रेजी में लिखनी हो तो इसे बुला

लेना।" दीनबंधु एंड्रूज ने बनारसीदास चतुर्वेदी की ओर संकेत कर कहा। ऋषितुल्य बड़े दादा ने एक क्षण चतुर्वेदी जी को देखा और पूछा—

"हां, तो चतुर्वेदी, वेदों का अध्ययन कितना किया है तुमने?"

"कुछ भी नहीं।" चतुर्वेदी जी ने लज्जापूर्वक सिर झुकाते हुए कहा।

"भारतीय दर्शनशास्त्र के विषय में कुछ जानते हो?"

"नहीं जानता।"

"मूल बातें भी नहीं जानते?" बड़े दादा ने अचरज से पूछा।

'नहीं जानता।" संकोचपूर्वक चतुर्वेदी जी बोले।

बड़े दादा ने आश्चर्य से चतुर्वेदी जी को देखा। वे नाम के साथ पंडित का तालमेल नहीं बैठा पा रहे थे। बोले, "अच्छा, बैठो। कुछ मोटी बातें सुन लो।" और बड़े दादा चालीस-पैंतालीस मिनट तक भारतीय दर्शन पर भाषण देते रहे। इसकी रूपरेखा समझाते रहे। ये ज्ञान वारिधी थे द्विजेंद्रनाथ ठाकुर, महर्षि देवेंद्रनाथ के ज्येष्ठ सुपुत्र और महाकवि रवीन्द्रनाथ ठाकुर के बड़े भाई। लेकिन अपने प्रकांड पांडित्य सरल जीवन और प्राणिमात्र के प्रति अपार ममता के कारण ये सभी के बड़े दादा कहलाते थे। उनका महान ज्ञान द्रवित होकर जीवन की अजस्र धारा बन गया था। अद्वैतवादी बड़े दादा उस दिन भोजन करने बैठे तो एक कौर अपने मुंह में डालते और एक सामने बैठे मैले कुचले वस्त्रधारी बच्चे को खिलाते। वह उनके नौकर का बालक था। उनकी जमींदार परिवार की महिलाओं

ने देखा तो अचरज से दातो तले अगुली दबा ली, "बडे दादा, यह क्या ? " इससे अधिक कोई क्या कहता उन्हे। कोई ब्राह्मण आया, "मेरी बेटी का विवाह है, कुछ सहायता कीजिए दयानिधान।" बडे दादा ने देखा इस समय उनके पास कुछ नही है। सहसा उनका ध्यान बाहर गया। "सुनो।" वे बोले, 'इस समय और तो कुछ मेरे पास नही है भैया, यह घोडागाडी है, इसे ले जाओ और बेचकर काम चलाओ।" और उन्होने याचक को घोडा गाडी दे दी। महर्षि देवेन्द्रनाथ को ऐसा लगा कि अब अपनी जिम्मेदारी बाँटने का समय आ गया है। उन्होने अपने ज्येष्ठ और योग्यतम इस पुत्र को जमीदारी का काम सौप दिया। बडे दादा लगान उगाहने गावो मे पहुँचे। उनकी उदारता और दानवीरता के किस्से प्रसिद्ध थे। अत किसानो ने कहा, "हुजूर, खाने को नही मिलता, लगान कहाँ से दें ?" किसानो की गरीबी और भोजन न मिलने की बात से वे द्रवित हो उठे तुरन्त पिताजी को पत्र भेजा, "यहाँ दुर्भिक्ष पडा हुआ है, तुरन्त रुपया भेजो।" ज्ञान और कर्म के समन्वय की इस साकार प्रतिमा के प्रथम दर्शन के बाद गाधी जी ने श्री द्विजेन्द्रनाथ के लिए साथक ही कहा था, "इतने दिनो बाद भारतवर्ष के प्राचीन ऋषि की मूर्ति देखने को मिली। आज तक केवल पुस्तको मे ही ऐसा पढा था। जो पशु पक्षी हम लोगो की आवाज सुनकर भाग खडे होते हैं, वे ही प्रेमवश बडे दादा के सगी हैं। अपूर्व है यह मत्री और प्रेम की लीला।" नि सदेह असीम ज्ञान जब दर्प की धुंध न बनकर कर्म का दर्पण बनता है तभी देवत्व के सोपान शुरू होते हैं।

39 आचरण की सुगन्ध बिखेरो

"कल प्रात मन्त्रिमण्डल की एक आपात् बैठक गवनर जनरल माउटबेटन की अध्यक्षता मे होगी।' कनल ने सैनिक अधिकारियो की तरफ देखते हुए कहा, 'ध्यान रहे यह महत्त्वपूण नक्शा बैठक से पूत्र तैयार चाहिए।" अधिकारी गण नक्शा बनाने मे जुट गए। 1947 के सत्ता हस्तातरण के उन दिनो मे प्रत्येक काम सतकता की अपेक्षा रखता था। दिनभर वे सैनिक अधिकारी नक्शा बनाने मे जुटे रहे। इसमे भारतीय सेना के सभी ठिकाने दिखाने थे। सायकाल नक्शा पूण कर जैसे ही अधिकारी गण उठे कि ले० श्रीनिवास सिन्हा चौक उठे, "अरे, यह तो सारा नक्शा ही गलत बन गया। वास्तविक ठिकानो के बजाय इसमे प्रस्तावित ठिकाने दिखा दिये गये।"

"अब क्या होगा ?" एक सहयोगी अधिकारी ने घबराहट भरे स्वर मे कहा। 'क्या हो सकता है अब ?" सिन्हा बोले, "प्रात बैठक है, कनल हमे माफ नही करेंगे इस भूल के लिए।"

सैनिक अधिकारी डरते डरते तत्कालीन कर्नल मानेक शा के पास गये। सब सोच रहे थे कि वे बरस पड़ेंगे। कर्नल मानेक शा को डरते डरते सभी भूलें बताई गईं। "पूरी रात तुम लोगो के पास है, फिर घबराहट कैसी ?" कनल मुसकराये, "तरोताजा होकर फिर से जुट जाइये, रात भर मे काम पूरा हो जाएगा।" इतनी भारी भूल के बावजूद कनल के चेहरे पर उद्वेग या क्रोध की एक रेखा न उभरी देखकर सैनिक अधिकारियो की दिनभर की थकान मिट गयी। इस अनपेक्षित सौम्य व्यवहार से उनका मन खिल उठा। भोर से पूव नक्शा तैयार हो

चुका था।

भयकर उद्वेगकारी परिस्थितियो मे आचरण की सुगध बिखेरने वाले ऐसे नायक काया पर नही, हृदयो पर राज्य करते हैं। ऐसे ही जननायक थे राजकुमार फिलिप। उस दिन वे जहाज मे यात्रा कर रहे थे। उनके विशेष सम्मान और सुरक्षा की व्यवस्था की गई थी। अत्यधिक सज-धज के साथ अपने प्रिय राजकुमार के स्वागत के लिए मन्द गति से शाही बैंरा अल्पाहार लेकर आ रहा था, ताकि वातावरण की तनिक भी हलचल उन्हे कष्ट न पहुँचा दें। किन्तु भरपूर सावधानी के बावजूद सहसा उसे ठोकर लगी। सारा सामान बिखर गया। काफी कुछ राजकुमार के कपडो पर भी बिखरा। शाही सेवक कांप उठा इस दुघटना पर।

सहसा राजकुमार फिलिप झुके और फर्श पर से नाश्ते के समोसे आदि बीनने लगे। फिर मुसकराकर अपनी पत्नी से बोले, "डार्लिंग, मैंने अपने हिस्से के बटोर लिये हैं, तुम अपने हिस्से के उठाओ।" एक स्निग्ध दृष्टि उन्होने युवक बैंरे पर डाली। इससे पहले कि वह पश्चात्ताप का कोई शब्द कहे, वे मुसकराते हुए बोले, "अब तुम जा सकते हो।"

प्रख्यात विचारक जेम्स एलेन ने ऐसे ही उदार मानवो को लक्ष्य कर कहा था, "इस धरती पर यदि कुछ बिखेरना ही चाहते हो तो आचरण की सुगध के ऐसे बीज बिखेरो ताकि चारो तरफ प्रेम और प्रसन्नता की बगिया लहलहा उठे।"

40 कर्म की भाषा मे संवाद

महान वैज्ञानिक आइस्टीन की ख्याति विश्वभर मे फैल चुकी थी। अनेक स्थानों से उनके पास स्वागत निमन्त्रण आते। विद्वानों को आशा रहती थी कि इन अभिनन्दन समारोहो मे आइस्टीन अपनी प्रखर मेधा और महान अनुवीक्षण शक्ति का शायद कोई रहस्य खोल देंगे। इसी क्रम मे एक दिन कोलम्बिया के सुप्रसिद्ध साहित्यकार डॉ० फ्रैंक आयडेलाटे ने आइस्टीन के सम्मान मे एक प्रीति सम्मेलन का आयोजन किया।

सम्मेलन मे डॉ० फ्रैंक आयडेलाटे ने वडे गौरव और आत्मविश्वास के साथ कहा, "हमे गर्व है कि महान वैज्ञानिक और विलक्षण बुद्धि के स्वामी आइस्टीन आज हमारा मार्गदर्शन करने के लिए उपस्थित हैं।" प्रसिद्ध साहित्यकार डॉ० फ्रैंक ने कहा, "इस युग की ही नही, सभवत आगामी युगो तक की दुर्लभ प्रतिभा का प्रतिनिधि मानव हमारे सामने ज्ञान के नये आयाम प्रस्तुत करेगा।" आइस्टीन खडे हुए। सभी उपस्थित अतिथि श्रोताओ ने स्वय को धन्य माना कि आज उन्हें ऐसे प्रतिभा सम्पन्न वैज्ञानिक से कुछ दिशा-दर्शन प्राप्त होगा। "सज्जनो !" आइस्टीन बोले, "मुझे अत्यधिक खेद है कि मेरे पास आप लोगो से कहने के लिए अभी कुछ भी नही है।" यह कहकर वे अपने स्थान पर आ बैठे।

अतिथियो मे असन्तोष की एक तीव्र लहर दौड गई। उन्हें आइस्टीन का भाषण सुनने के लिए ही तो बुलाया गया था। डॉ० फ्रैंक ने अपने आतिथेय की लाज रखने के लिए उनसे पुन निवेदन किया कि वे कुछ तो बोलें। आइस्टीन पुन मच पर

पहुँचे, "मुझे क्षमा कीजियेगा।" वे बोले, "जब भी मेरे पास कहने के लिए कुछ होगा, मैं स्वय आप लोगो के सम्मुख उपस्थित हो जाऊँगा।" विद्वान श्रोता ठगे से रह गये। उनमे से अनेक बडबडाये, "हम आइस्टीन के दशन करने तो नही आये थे।" किसी प्रकार डॉ० फ क ने वातावरण को सामान्य बनाया। समय बीतता गया। सब लोग इस घटना को भूल गये थे कि ठीक छ वर्ष बाद डॉ० फ क आयडेलाटे के पास आइस्टीन का तार आया, "मित्रवर, अब मेरे पास कहने के लिए कुछ है—मा य अतिथियो को बुलाइये।" शीघ्र ही दूसरे दिन साहित्यकारो के प्रीति सम्मेलन का आयोजन किया गया। आइस्टीन मच पर आये और अपना नया वैज्ञानिक सिद्धान्त 'क्वाटम थ्योरी' समझाना शुरू कर दिया। पाँच दस मिनट नही, आइस्टीन धारा-प्रवाह एक घटे तक यह वैज्ञानिक सिद्धा त समझाते रहे। साहित्यकार इस बार भी ठगे से देखते रहे। उ हे इस विज्ञान-दर्शन का एक शब्द भी समझ मे नही आ रहा था। अपने सिद्धात की व्याख्या करके आइस्टीन ने विजयी मुद्रा मे अपना स्थान ग्रहण किया।

अ त मे डॉ० फ क खडे हुए। उनके चेहरे पर अपरिमित सतोष की आभा थी। वे बोले, "मित्रो, हम सब साहित्यकार हैं इसलिए महान वैज्ञानिक का एक शब्द भी हमारी समझ मे नही आया, लेकिन आइस्टीन ने हमे एकाग्र साधना का वह मम समझा दिया है, जो हजारो दशन ग्रथ भी नही समझा सकते।" डॉ० फ क ने अतिथियो से पूछा, "क्या उनकी एकाग्र साधना का यह मौन स देश काफी नही है कि जब तक उनके सम्मुख कृति न हो, वे अनावश्यक एक भी शब्द बोलना काय शक्ति का अपव्यय

समझते हैं ?" प्रत्युत्तर मे उस क्षण तालियो की गडगडाहट से अतिथि कक्ष गूँज उठा। श्रोताओ ने उस क्षण हजारो दर्शन-शास्त्रो के साथ एकाग्र साधना के महत्त्व को साकार देखकर आइस्टीन का हार्दिक अभिनन्दन किया। •

41 महत्तर की खोज मे

न्यूयार्क के विख्यात कहानीकार जेम्स थर्बर की कहानी पर बनी फिल्म 'वाल्टर सिटी' ने प्रदर्शित होते ही अपूर्व सफलता प्राप्त कर ली। इसकी सफलता के कारण बडे बडे निर्माताओ ने थर्बर को फिल्म कथा लिखने के लिए अनुबधित करना चाहा। प्रतिदिन ऐसे प्रस्तावो के अनेक पत्र आये। थर्बर उस समय 'न्यूयार्कर' पत्र मे काम करते थे। फिल्म निर्माताओ के पास धन का अपार प्रलोभन था लेकिन थर्बर उन प्रस्तावो को एक नजर देखते और रद्दी की टोकरी मे डाल देते। निर्माता गोल्डविन ने सकल्प किया कि किसी भी कीमत पर इस महान कथाकार को मैं अनुबधित करके ही रहूँगा। वह प्रतिदिन धनराशि बढाकर पत्र लिखते लेकिन प्रत्युत्तर मे जेम्स थर्बर का तुरन्त उत्तर होता कि "न्यूयार्कर' के सपादक मि० रास ने मेरे वेतन मे इससे अधिक वृद्धि कर दी है। आखिर वेतन की राशि बढाते-बढाते गोल्डविन ने पत्र लिखा, "मैं आपको पच्चीस हजार डालर प्रति सप्ताह दूगा। निश्चय ही इससे अधिक तो समाचार-पत्र नही दे सकता, इसलिए मैं आशा करता हूँ कि इस प्रस्ताव को आप नही ठुकरायेंगे और तुरन्त स्वीकृतिसूचक उत्तर देंगे।" जेम्स थर्बर ने लापरवाही से पत्र देखकर रद्दी की टोकरी

मे डाल दिया और गोल्डविन को लिखा, "रास ने मेरा वेतन पच्चीस हजार डालर प्रति सप्ताह कर दिया है।" थर्वर को अनुबधित करने का संकल्प करने वाला गोल्डविन इस पत्र को पाकर झल्ला उठा, "यह सब झूठ है, कोई अखबार थर्वर को इतना पैसा नही दे सकता।" उसने थवर को क्रोध मे पत्र लिखा, 'अब मैं आपको प्रति सप्ताह पन्द्रह हजार से अधिक नही दे सकता। इतने वेतन पर जब आपको आना हो तो आ जायें।" थोडे ही दिन बाद निर्माता गोल्डविन को थवर का एक पत्र मिला। उसमे लिखा था, "मि० गोल्डविन, कृपा के लिए धन्यवाद! रास ने भी मेरे वेतन मे आपके अन्तिम प्रस्ताव के अनुसार ही कटौती कर दी है।"

गोल्डविन इस विचित्र लेखक के चिन्तन से आश्चयचकित रह गया। प्रख्यात फिल्म निर्माता गोल्डविन थवर से मिलने का लोभ सवरण न कर सका। उसने अपनी कार निकाली और थर्वर के निवास पर जा पहुँचा। जेम्स थवर उस महान फिल्म निर्माता को अपने निवास पर देखकर आश्चयचकित हुए। गोल्डविन ने पूछा, "मि० थर्वर, तुम्हे 'ययाकर' क्या किसी भी समाचार-पत्र मे मेरे प्रस्ताव के मुताबिक धन मिलना असभव है, फिर भी तुमने इतने आकर्षक वेतन प्रस्ताव को क्यो ठुकरा दिया?"

"मिस्टर गोल्डविन!" थवर ने उत्तर दिया, "नि सन्देह मुझे 'यूयार्कर' मे कम पैसा मिलता है और आपके बराबर कोई भी नही दे सकता लेकिन मेरे अस्वीकार करने का कारण दूसरा है।" "क्या?" गोल्डविन ने आश्चयपूर्वक जानना चाहा।

'धनार्जन की जीवन के लिए अनिवार्यता है लेकिन उससे

भी ऊपर है जीवन का सतोषदायी लक्ष्य, और जो लक्ष्य मुझे 'न्यूयार्कर' के माध्यम से अपने देश और समाज के लिए लिखने मे मिल सकता है, वह अन्य कही नही।" थर्बर ने गोल्डविन की ओर विजेता की दृष्टि से देखते हुए पूछा, "क्या जीवन लक्ष्य के इस बहुमूल्य आत्मसतोष की कीमत आप दे सकते हैं ?" प्रत्येक वस्तु को धन-बल से खरीदने वाले गोल्डविन को उस दिन समझ मे आया कि धन से भी महत्तर वस्तु को उन्होने देखा है।

42 · कर्म का आदर्श

"आखिर तुमने इस बार फिर त्यागपत्र दे दिया ?" इग्लेड के प्रख्यात मानवतावादी पत्रकार एच० डब्ल्यू० नेविनसन से उसके पत्रकार मित्र ने पूछा। उसने व्यग्रतापूर्वक कहा, "क्या जीवन भर तक तुम अपने सिद्धान्तो के लिए दर दर भटकते ही रहोगे ?" नेविनसन ने मुसकराकर उत्तर दिया, "भई, चुप रहना मेरे लिए मुश्किल है, सिद्धान्त के सामने अपनी वाणी को रोकना मेरे लिए मृत्यु के समान है। और, हाँ," नेविनसन ने गम्भीरता से कहा, "मेरा समय हो गया है, मुझे महिला मताधिकार सम्मेलन की मीटिंग मे जाना है।" मित्र ने टोका,"ठीक है, लेकिन क्या जरूरी है कि रिपोर्टिंग का काम छोडकर तुम उनके सघर्ष मे ही कूद पडो और पत्रकार के बजाय हर जगह एक योद्धा बन जाओ ?" नेविनसन मुसकराया और बिना उत्तर दिए सम्मेलन के लिए चल पडा।

सभास्थल महिलाओ से भरा हुआ था। इसमे विशेष आमन्त्रित इग्लड के मन्त्री लायड जाज जैसे ही बोलने के लिए

मे डाल दिया और गोल्डविन को लिखा, "रास ने मेरा वेतन पच्चीस हजार डालर प्रति सप्ताह कर दिया है।" थर्वर को अनुबंधित करने का संकल्प करने वाला गोल्डविन इस पत्र को पाकर झल्ला उठा, "यह सब झूठ है, कोई अखबार थर्वर को इतना पैसा नहीं दे सकता।" उसने थर्वर को क्रोध मे पत्र लिखा, 'अब मैं आपको प्रति सप्ताह पन्द्रह हजार से अधिक नही दे सकता। इतने वेतन पर जब आपको आना हो तो आ जायें।" थोड़े ही दिन बाद निर्माता गोल्डविन को थर्वर का एक पत्र मिला। उसमे लिखा था, "मि० गोल्डविन, कृपा के लिए धन्यवाद! रास ने भी मेरे वेतन मे आपके अन्तिम प्रस्ताव के अनुसार ही कटौती कर दी है।"

गोल्डविन इस विचित्र लेखक के चिन्तन से आश्चर्यचकित रह गया। प्रख्यात फिल्म निर्माता गोल्डविन थर्वर से मिलने का लोभ संवरण न कर सका। उसने अपनी कार निकाली और थर्वर के निवास पर जा पहुँचा। जेम्स थर्वर उस महान फिल्म निर्माता को अपने निवास पर देखकर आश्चर्यचकित हुए। गोल्डविन ने पूछा, "मि० थर्वर, तुम्हे 'न्यूयार्कर' क्या, किसी भी समाचार पत्र में मेरे प्रस्ताव के मुताबिक धन मिलना असंभव है, फिर भी तुमने इतने आकर्षक वेतन प्रस्ताव को क्यों ठुकरा दिया?"

"मिस्टर गोल्डविन!' थर्वर ने उत्तर दिया "निःसन्देह मुझे 'न्यूयार्कर' मे कम पैसा मिलता है और आपके बराबर कोई भी नही दे सकता लेकिन मेरे अस्वीकार करने का कारण दूसरा है।" "क्या?" गोल्डविन ने आश्चर्यपूर्वक जानना चाहा।

'धनार्जन की जीवन के लिए अनिवार्यता है लेकिन उससे

भी ऊपर है जीवन का सतोषदायी लक्ष्य—और जो सतोष मुझे 'न्यूयार्कर' के माध्यम से अपने देश और समाज के लिए लिखने मे मिल सकता है, वह अन्य कही नही।" थर्बर ने गोल्डविन की ओर विजेता की दृष्टि से देखते हुए पूछा, "क्या जीवन लक्ष्य के इस बहुमूल्य आत्मसतोष की कीमत आप दे सकते हैं?" प्रत्येक वस्तु को धन-बल से खरीदने वाले गोल्डविन को उस दिन समझ मे आया कि धन से भी महत्तर वस्तु को उन्होंने देखा है। •

42 कर्म का आदर्श

"आखिर तुमने इस बार फिर त्यागपत्र दे दिया?" इग्लैंड के प्रख्यात मानवतावादी पत्रकार एच० डब्ल्यू० नेविनसन से उसके पत्रकार मित्र ने पूछा। उसने व्यग्रतापूर्वक कहा, "क्या जीवन भर तक तुम अपने सिद्धान्तो के लिए दर दर भटकते ही रहोगे?" नेविनसन ने मुसकराकर उत्तर दिया, "भई, चुप रहना मेरे लिए मुश्किल है, सिद्धान्त के सामने अपनी वाणी को रोकना मेरे लिए मृत्यु के समान है। और, हाँ," नेविनसन ने गम्भीरता से कहा, "मेरा समय हो गया है, मुझे महिला मताधिकार सम्मेलन की मीटिंग में जाना है।" मित्र ने टोका, "ठीक है, लेकिन क्या जरूरी है कि रिपोर्टिंग का काम छोडकर तुम उनके सघर्ष मे ही कूद पडो और पत्रकार के बजाय हर जगह एक योद्धा बन जाओ?" नेविनसन मुसकराया और बिना उत्तर दिए सम्मेलन के लिए चल पडा।

सभास्थल महिलाओ से भरा हुआ था। इसमे विशेष आमन्त्रित इग्लैंड के मन्त्री लायड जार्ज जैसे ही बोलने के लिए

खड़े हुए कि महिलाओ के लिए मताधिकार माँगने वाली महिलाएँ खडी हो गयी। वहीं से एक स्वर उभरा, "हमे ठोस काम चाहिए, कोरे आश्वासन नही।" फिर क्या था, चारो ओर से शोर मच गया। प्रबधको (पुलिस) ने महिलाओ को पकड पकडकर बाहर फेंकना शुरू किया। भला निमम नेविनसन कैसे चुप रह सकते थे? वे उठ खडे हुए और बोले,"मि० लायड जाज, क्या इस बार फिर बेरहमो से कार्यवाही की जाएगी?" बात यह थी कि इससे पहले भी महिला मताधिकारो की माँग करने वाली महिलाओ को लायड जार्ज ने एक मीटिंग मे से जबरदस्ती उठवाकर बाहर फिकवा दिया था। नेविनसन तब तक इस अन्याय के विरुद्ध चिल्लाते रहे जब तक उन्हे मारते मारते बेहोश करके सडक पर न फेंक दिया गया। होश आने के बाद घर पहुँचे तो नेविनसन को पत्र के सम्पादक ए० जी० गार्डिनर द्वारा नौकरी से निलम्बन का आदेश मिला। अगले दिन नेविनसन ने जब अपने पत्र 'डेली न्यूज' में ही महिला मताधिकार के विरुद्ध अग्रलेख देखा तो वे क्षुब्ध हो उठे और तुरन्त त्यागपत्र लिखकर भेज दिया। अब सिद्धान्तवादी नेविनसन के सामने फिर भयकर अनिश्चितता आ खडी हुई। आदर्शवादी नेविनसन फिर भूख और अभाव से लडते रहे। लेकिन जब एक दिन उन्हे समाचार मिला कि महिलाओ को मताधिकार मिल गया है तो उनकी प्रसन्नता का ठिकाना न रहा। इसका सबसे बडा श्रेय नेविनसन को ही दिया गया, महिलाओ के द्वारा विशाल सम्मेलन मे उन्हे हार्दिक धन्यवाद के साथ ही 280 [illegible] भेंट [illegible]

उस दिन नेविनसन ने अपनी [illegible] थ [illegible] के विरुद्ध सफलता के चन्द क्षणो

पुरस्कार होती है। क्या ही अच्छा होता कि सफलता के महोत्सव के इन क्षणो मे मेरे जीवन का अवसान हो जाता। मैं एक विजयी योद्धा के रूप मे इस धरती से चला जाता। काश, मृत्यु के लिए व्यक्ति उचित अवसर चुन सकने मे समर्थ हो पाता।" नेविनसन की यह आकाक्षा ध्येय के साथ एकाकार होने की ही परिचायक थी। वह आदर्शो के लिए जिया लेकिन उसकी कामना थी कि वह मृत्यु का आलिंगन भी विजयी योद्धा की भाँति ही करे—जीवन और मृत्यु के बीच कोई क्षण अकर्मण्यता का उसे स्वीकार न था।

43 · पीड़ितो का ध्यान

"कुम्भ नहाने आया था।" दीनता मे महाकवि निराला की ओर याचनाभरी दृष्टि से देखते हुए उसने कहा, "मेरे सभी वस्त्र और सामान चोरी चला गया, उसमे कुछ पैसे भी थे।" वह केवल एक लगोटी पहने सीधे गगाघाट से आया था, सर्दी से कॉप रहा था। "किसी तरह दिन का समय तो सूरज की धूप मे कट जाएगा।" उसने कहा, "लेकिन रात की सर्दी बिना वस्त्रो के बिताना मुश्किल है।"

निराला जी ने उसे नीचे से ऊपर तक घूरकर देखा और एक क्षण की भी देर किये बिना कधे से अपना कम्बल उतारकर उसे दे दिया। "यह आपने क्या किया?" साथ मे खडे उनके मित्र वाचस्पति पाठक ने पूछा, "जानते हैं, थोडी देर मे यह कम्बल को गुदडी बाजार मे जाकर चार आने मे बेच देगा।" पाठक जी उलाहने भरे स्वर मे बोले, "लगता है, आप अपना नाम सार्थक

करने पर ही तुले हैं। भला इस प्रकार सहानुभूति के नाम पर छले जाने मे तुक क्या है ?" "धोखा भी हो सकता है, और इसकी बात सच भी हो सकती है।"

कुछ दिन बाद काग्रेस के अधिवेशन मे दर्शक की हैसियत से गये निराला जी अचानक 'निराला जी, निराला जी' की पुकार से चौक पडे। देखा—एक व्यक्ति स्वयसेवक की वर्दी मे दौडा आ रहा है। निराला जी उसे एकटक देखते ही रह गये, पहचान नही पाये। "मैं वही हूँ," उसने लडखडाती हिन्दी मे कहा, "जिसे आपने ओढने को कम्बल दिया था।" आतरिक श्रद्धा और कृतज्ञता उसके रोम-रोम से छलक रही थी।

'देश जाना चाहता हूँ, रेल का किराया नही है तो कोई बात नहीं, भीख माँगते माँगते खाते पैदल चला जाऊँगा, लेकिन " उसने अपने पैरो की ओर देखते हुए कहा, "पैर जल जाते हैं, तेज गर्मी से धरती जलती है, एक जोडी चप्पल आप ले दें तो "

लौह सदृश देह और अतक्य बुद्धिशाली इस नरपुगव के हृदय मे दया ममता के अजस्र स्रोत बहते थे। वे अपनी विवशता पर लज्जित हो उठे। उनके पैरो मे स्वय जीर्णप्राय चप्पल थे। "क्षमा करें, बन्धु !" वे बोले, 'काश ! मैं तुम्हारी यह सहायता कर सकता।" "कोई बात नही, आप मजबूर है आप खुश रह।" वह हय-अश्रु बिखराता ढेरो आशीर्वाद देता चला गया। महाकवि अपनी विवशता को विस्मत करने के लिए शून्य आकाश की ओर निहारने लगे।

44 लोकहित मे समर्पित

"क्या सुनते नही लाख बार कहा है कि मैं काम मे लगी हूँ, बहरे हो क्या ?" महिला ने क्रुद्ध होकर कहा और यह कहते हुए भीगा पोतना उठाकर समर्थ गुरु रामदास के चेहरे पर दे मारा। समथ गुरु रामदास कीचड के गदे पानी से लथपथ हो गए, लेकिन उनके चेहरे पर वही सौम्य शाति बनी रही और वे उस द्वार से वापस लौट आए। छत्रपति शिवाजी ने समथ गुरु से आग्रह किया था कि वे राज्य का आतिथ्य स्वीकार करें क्योंकि इस राज्य की स्थापना उन्ही के तप तेज का ही तो फल है। किन्तु समर्थ गुरु ने इस प्राथना को यह कहकर ठुकरा दिया था कि सन्यासी का धम सेवा है, ग्रहण नही। इसलिए उ होने राज्य से कोई भी प्रतिदान न ग्रहण कर भ्रमण और भिक्षा काय जारी रखा। यह भ्रमण और भिक्षा का ब धन उ होने अपने सभी शिष्यो पर लागू किया हुआ था, ताकि वे समाज की वास्तविक दशा और व्यथा-कथा से परिचित रहे।

इसी प्रसग मे भिक्षाटन करते हुए वे इस दिन एक कस्बे मे पहुँचे। भिक्षा के अवसर पर एक विशाल भवन के द्वार पर जाकर उ होने अभग गाने शुरु किये। गृहिणी ने दूर से ही चिल्लाकर कहा, "मैं काम मे व्यस्त हूँ, फिर कभी आना।" कि तु समर्थ गुरु तो रामभजन मे लीन थे अत गृहिणी की बात सुने बिना गाते रहे। इसी पर क्रुद्ध होकर उक्त गृहिणी ने भीगा पोतना समर्थ गुरु के चेहरे पर दे मारा।

इस प्रकार उक्त महिला द्वारा उ ह प्रताडित, अपमानित करने की घटना कस्बे मे फल गयी। जन समूह विक्षुब्ध हो उठा।

एक महान तपस्वी सन्यासी का ऐसा अपमान ! लोगो ने उस महिला की भरपूर निन्दा की। अन्त मे वह लोक प्रताडित महिला स्वय समथ गुरु के सम्मुख क्षमा याचना के लिए उपस्थित होकर बोली, "स्वामी जी, मैं भूल से आप जैसे महात्मा का अपमान कर वैठी। लोकनिंदा के रूप मे मुझे उसका काफी पुरस्कार मिल चुका है। मुझे क्षमा करें, तभी मेरा उद्धार होगा।"

"बहन !" चरणो मे नत महिला से समर्थ गुरु ने स्नेहपूर्वक कहा,' तुम किसी भी हालत मे दोषी नही हो, क्योकि तुमने मुझसे जो कहा था अभग गाते रहने के कारण मैं सुन नही सका था।" समर्थ गुरु ने पश्चात्ताप से विगलित महिला को आदत करते हुए कहा, ' फिर तुमने जो पोतना मुझे समर्पित किया वह मेरे बहुत काम आया। मेरे पास भगवान राम की आरती उतारने के लिए दीप बाती की हमेशा कमी रहती थी, तुम्हारे द्वारा दिए इस पोतने को धो धोकर मैंने साफ किया और उसके धागो से सैकडो बत्तिया बना ली।'

सभी जानते थे कि शक्ति-सम्पन्न समर्थ गुरु ने साम्राज्य निर्माण किया लेकिन राजगुरु के पद तक को स्वीकार नही किया। ऐसे लोकसेवक सन्यासी से ही जनता अभिभूत होकर देश के लिए प्राणार्पित करने के लिए तत्पर रहती थी। समथ गुरु के समीप अब शिष्यो का जमघट लगने लगा। उन्होने देखा कि उनमे अनेक स्वाथवश इकटठे हो गये है। उन्हे लगा कि ऐसे निकम्मे शिष्यो से तो लोक-कल्याण के माग मे बाधा ही पहुँचेगी, अत इन्हे किसी तरह खिसकाना चाहिए। एक उचित अवसर पर उन्होने शिष्यो के एकत्रित समुदाय मे नग्न तलवार घुमाना

शुरू कर दिया और हरेक की ओर मारने के लिए झपटे। अनेक शिष्य 'समर्थ जी पागल हो गये है' कहते हुए भाग गए। उनमे ने एक शिष्य यह समाचार कल्याण स्वामी को सुनाने पहुँचे। वे आए और जैसे ही वे समर्थ गुरु के पास गये, समथ गुरु उनकी ओर तलवार तानते हुए बोले—

"खबरदार, आगे बढे तो तुम्हे मार डालूगा।"

"अवश्य, मैं मरने के लिए प्रस्तुत हूँ।" गह कहते हुए कल्याण स्वामी गरदन झुकाकर खडे हो गये। समथ गुरु ने तत्क्षण मुसकराकर कल्याण स्वामी को देखा और तलवार म्यान मे रख ली। समथ गुरु का मठ निकम्मे शिष्यो से मुक्त हो चुका था। इस प्रकार आदश राज्य की स्थापना मे छत्रपति शिवाजी के मागदृष्टा समर्थ गुरु लोकसग्रह और लोकसेवा के प्रति सतत जागरूक रहे। •

45 उपदेश नही, मौन कार्य

प्रसिद्ध बौद्ध त्रिपिटकाचाय ने जैसे ही राजदरबार मे प्रवेश किया, मगध सम्राट अशोक ने उनका हार्दिक स्वागत किया। त्रिपिटकाचाय ने आसन ग्रहण कर कहा, "सम्राट, मैंने पचीस वर्षो तक सारे बौद्ध जगत् का तीर्थाटन करके धम के गूढ तत्त्वो का रहस्योद्घाटन किया है। मेरी कामना है कि आपके राज्य का पुरोहित बनकर मैं मगध के शासन को धम के कल्याणकारी मार्ग पर चलने मे निमित्त बनू।" सम्राट अशोक भिक्षु की कामना सुनकर मन-ही मन मुसकराए। किन्तु प्रत्यक्ष रूप मे आदर सहित बोले "आपकी इच्छा मगलमयी है भगवन, कितु

आप से मेरी प्रार्थना है कि आप धर्मग्रन्थो की एक आवृत्ति और कर लें तो अच्छा।" भिक्षु त्रिपिटकाचार्य को सम्राट की बात पर बडा क्रोध आया, लेकिन उस समय उसने मौन रहकर सम्राट के परामर्श को मानना ही उचित समझा। 'आखिर राज-पुरोहित के प्रतिष्ठित पद को प्राप्त करने के लिए राजहठ का मान रखने मे हर्ज भी क्या है।' उसने सोचा।

पूरा एक वर्ष धर्मग्रन्थो को पुन पढने मे लग गया। भिक्षु पुन सम्राट के सम्मुख उपस्थित हुआ। सम्राट ने इस बार फिर उसे एक बार और धर्मग्रन्थो के पारायण का विनम्र परामर्श दे डाला। भिक्षु क्रोध और अपमान से आहत हो उठा। उसे लगा कि ज्ञान गाम्भीर्य की उपेक्षा कर सम्राट ने उसका ही अपमान नही किया अपितु देश का भी अहित किया है। आखिर वह देश के हित मे ही तो यह महान उत्तरदायित्व लेना चाहता था—उसने सोचा। अपमान के दश से आहत भिक्षु नदी के नीरव तट पर सध्या प्रार्थना के लिए जा बैठा। आहत स्वाध्याय अहम सिमट गया। दिव्य चेतना के तार झकृत हो उठे। भिक्षु को लगा जैसे अनन्त आनन्द की धारा मे वह निमग्न हो गया है।

एक वर्ष बीत गया। सम्राट अशोक अपनी धर्मयात्रा के अनुक्रम मे उधर आ निकले।

उन्होने भिक्षु त्रिपिटकाचार्य को असीम आनन्दमग्न स्थिति मे साधनारत देखा। सम्राट ने देखा कि पाडित्य के गर्व के बजाय उनके मुखमण्डल पर आत्मज्ञान का दिव्य आलोक व्याप्त हो गया है। सम्राट अशोक ने प्रार्थना की, "आचार्यप्रवर, मगध की प्रजा आपकी बाट जोह रही है। धर्माचार्य का आसन आपके लिए रिक्त है। लोककल्याण के लिए आप मगध का मार्गदर्शन

करें।"

भिक्षु त्रिपिटकाचाय के अधरों पर दिव्य मुसकान बिखर गयी। "राजन, न मुझे अब धर्मासन की कामना है और न मगध को उसकी आवश्यकता। ज्ञान के सूय से पाडित्य की धुध पिघल गयी है। धर्म का उपदेश नहीं, आचरण होना चाहिए। आचरण की ज्योति से स्वय वे किरणें फूटती हैं जो शब्दातीत हैं, जिनकी अदृश्य शक्ति वाणी से सहस्रगुना प्रभावी है। आपके राज्य मे आप सदृश्य ऐसे कर्मयोगी बढते रहे तो धम का दीपक स्वयमेव जलता रहेगा।" सम्राट अशोक भिक्षु त्रिपिटकाचाय को आदराजलि अर्पित कर जब वापस लौटे तो उन्हे आभास हुआ कि भिक्षु का तपोतेज अब इस वन प्रातर से ही उनकी समस्त प्रजा को आलोकित करता रहेगा। •

46 सेवापथ की शक्ति

श्रावस्ती किसी समय समद्ध और शक्ति सम्पन्न राज्य था और आज यह अकाल की पीडा से छटपटा रहा है। भगवान बुद्ध ने श्रावस्ती के श्रेष्ठीजनो को उद्बोधित करते हुए कहा, "कौन सहस्रो भूखो को भोजन देने की जिम्मेदारी उठा सकता है?" श्रेष्ठी सभा मे इस प्रश्न को सुनकर मौन छा गया। भ्रमण करते हुए उन दिनो गौतम बुद्ध श्रावस्ती मे ही ठहरे थे और श्रावस्ती गणराज्य को इस विपत्ति के समय, जिसमे हजारो लोग अनावृष्टिजन्य अकाल के कारण मृत्यु के मुख मे समा रहे थे, वे द्रवित हो उठे थे। सहसा उनकी दृष्टि श्रावस्ती गण के श्रेष्ठी रत्नाकर शाह पर केन्द्रित हुई। रत्नाकर शाह ने सब

कुछ समझते हुए विनम्रतापूर्वक कहा, "महाबोधि क्षमा करें, इन सहस्रों क्षुधार्त लोगों के लिए तो मेरी सम्पत्ति से भी अधिक धन चाहिए।"

अन्य उपस्थित धन-कुबेरों ने भी पूछे जाने से पूर्व ऐसे ही उत्तर दिए कि वे अकिंचन हैं और उनका धन भूखों की क्षुधा शांत कर पाने के लिए अपर्याप्त है। मन्त्रिगण भी हताश होकर टुकुर टुकुर देख रहे थे। व्यथित हृदय सेनापति ने महात्मा बुद्ध से निराशाजनक स्वर में कहा, "भगवन, हम सब पीड़ित प्रजाजनों के लिए अपने प्राण भी अर्पित कर सकते हैं, किन्तु किसी के पास भी इतना धन नहीं है जो सहस्रों क्षुधार्तों की भूख मिटा सके।" अचानक सभाभवन के द्वार के समीप एक स्वर उभरा—"भगवन्, मुझे आज्ञा हो तो मैं इस कर्तव्य भार को उठा सकती हूँ। मैं दे सकूँगी सहस्रों भूखों को भोजन।" भगवान बुद्ध सहित सभी श्रेष्ठीजनों की दृष्टि सभागार के द्वार की ओर घूम गयी। यह स्वर एक भिखारी कन्या का था। बुद्ध के मुख-मंडल पर दिव्य मुसकान उभर आयी, लेकिन श्रेष्ठीजनों की आँखों से बरस रहे थे व्यंग्यबाण। किसी ने कहा, "भिखारी कन्या का दुस्साहस देखिए, अपना पेट भरने के लिए दर-दर भटकने वाली श्रावस्ती गणराज्य के सहस्रों भूखों की भूख मिटाने की बात करती है। पागल है।" कोई स्वर उभरा। बुद्ध ने बालिका को स्नेहपूर्वक पुकारा, "क्या नाम है, धन्य बालिके तुम्हारा?" "सुप्रिया।" बालिका का संक्षिप्त उत्तर था। महात्मा बुद्ध ने आत्मविश्वास और वज्र संकल्प से प्रदीप्त सुप्रिया की ओर देखते हुए पूछा, "बता दो बेटी, श्रेष्ठीजनों को बता दो कि तुम अपना संकल्प कैसे पूरा

करोगी।"

"मैं सबसे निधन हूँ महाप्रभु, यह सत्य है, लेकिन इसीलिए सब के भडार गृहो मे मेरा हिस्सा है।" बालिका ने कहा, "हाँ, प्रभु मेरे अह की सीमा भी तो नही है कोई, मैं अस्तित्वहीन भिखारिन कन्या घर घर, द्वार द्वार जाकर याचना करूँगी और सबके भडारो से अन्न सग्रह कर सहस्रो भूखो को भोजन दूगी।"

"हम भी घर-घर से 'अन्न सग्रह अभियान' मे सुप्रिया का साथ देंगे।" स्वाभिमानी युवक समूह ने इस चेतावनी को स्वीकारा। श्रेष्ठीजन विस्मित, लज्जित और चकित थे।

भगवान बुद्ध ने श्रेष्ठीजनो को सबोधित किया, "सेवा के वज्र सकल्प और उसके लिए समपण मे महाशक्ति छिपी है। भद्रजनो, सेवा-पथ पर बढने वाले के पथ की सभी बाधाएँ स्वय गिर जाती हैं, यही सुप्रिया की शक्ति है, यही हर सेवक की शक्ति है।"

47 चिकित्सा जिसका धर्म है

स्वदेश भक्ति की प्रेरणा से वह अपने देश की सेना मे सास्कृतिक एव प्रचार दल की सदस्या के रूप मे काय तो करने लगी लेकिन युद्धकाल के कठोर सघष के कारण अल्पकाल मे ही उसका स्वास्थ्य गिरना गया। सै य चिकित्सको ने निदान किया कि उसे क्षय हो गया है। उसका उचित उपचार वहाँ सभव नही था। डॉक्टर निराश थे। ऐसी कतव्यपरायण युवती की प्राण-रक्षा मे स्वय को वे असहाय अनुभव कर रहे थे। सहसा

उन्हे केन्द्रीय हेवई क्षेत्र के इस मुख्यालय पर प्रख्यात सर्य चिकित्सक डॉ० वैथ्यू के आने का समाचार मिला। उन्होने इस कैनेडियन डॉक्टर से प्रार्थना की कि वह इस कर्तव्यपरायण देशभक्त युवती की जान बचाने के लिए कुछ करें। डॉ० वैथ्यू ने युवती सन का परीक्षण किया और दीर्घ नि श्वास छोडा।

"डॉक्टर, क्या मिस सन को किसी प्रकार बचाया जा सकता है ?" उन्होने पूछा।

"हाँ, इसे बचाया जा सकता है।" डॉक्टर वैथ्यू ने गम्भीरता पूर्वक कहा 'लेकिन यहाँ नही, इसे वीपिंग (वतमान वीजिंग) ले जाना होगा।"

वीपिंग का नाम सुनते ही उन सबके चेहरो पर हताशा व्याप्त हो गई। वीपिंग उन दिनो शत्रुओ (जापान) के कब्जे मे था और वहा जाने का प्रयास भी मृत्यु के वरण से कम न था। लेकिन कतव्यपरायण डॉक्टर निराश होना नही जानता था। उसने अपने कार्यालय मे आते ही अपने वरिष्ठ अधिकारी, 'चीफ ऑफ स्टाफ' को पत्र लिखा कि किसी भी प्रकार इस लडकी को वीपिंग भेजने का प्रबध कराया जाये। लेकिन उन्होने इसे अपना दायित्व मानने से इनकार कर दिया। डॉ० वैथ्यू इस उत्तर से मर्माहत हो उठे। "ओह !" उन्होने अन्तर की सारी व्यथा को समेटते हुए कहा, 'देश के लिए समर्पित प्रत्येक प्राण मूल्यवान है, मुझे प्राण बचाने ही होगे।" उन्होने अपने सहायक को निर्देश दिया, "तुरन्त मेरे अश्व को तयार करो, अब जनरल के पास ही इस काय के लिए चलना होगा।' सहायक हतप्रभ थे डॉ० वैथ्यू की निष्ठा देखकर। एक रोगी को बचाने के लिए वे मन का चन खो बैठे थे। जनरल के पास पहुँचते ही वे सादर

बोले, "जनरल, आशा है आप मुझे एक वचन देंगे।" चीन के सर्वोच्च सेनापति हैलाग ने चकित भाव से डॉ० वैथ्यू को ओर देखा। अपने लिए जिसने कभी कुछ नही चाहा, कुछ नही माँगा, वह कर्तव्यपरायण डॉक्टर कैसी याचना लेकर आया है।

'मैं तुम्हारी क्या सहायता कर सकता हूँ डॉ० वैथ्यू?" सेनापति ने एक कुर्सी की ओर बैठने का इशारा करते हुए डॉक्टर से पूछा।

"मैं एक लडकी को चिकित्सा के लिए पीकिंग भेजना चाहता हूँ।"

'यह असभव है!" डॉक्टर की बात बीच में ही काटते हुए जनरल बोले। तनिक रुककर सेनापति ने फिर कहा, "जानते हो स्थितियां कितनी भयानक हैं? हमारे पास अनेक घायल और बीमार सैनिक हैं। हम उनमें से एक को भी पीकिंग नही भेज सकते। यदि हमने ऐसी परम्परा स्थापित कर दी तो बडी कठिनाई हो जायेगी।"

डॉ० वैथ्यू विचलित हो उठे, "जनरल, प्रश्न परम्परा की स्थापना और उल्लघन का नहीं है। इस देशभक्त युवती के प्राण सकट मे हैं, इसे तुरन्त चिकित्सा की जरूरत है। मैं एक डॉक्टर के नाते चुपचाप असहाय होकर इस स्थिति को देख नही सकता।"

जनरल हैलाग मुसकराए, "तुम्हारी इस बात से मैं [illegible] हूँ — प्रत्येक मानव का [illegible] जरूरी तो नही कि [illegible]

डॉ० वैथ्यू [illegible] "मैं [illegible]

हूँ और आप से बेहतर जानता हूँ कि किस रोगी को कहाँ भेजा जाना चाहिए।"

आखिर सेनापति हैलाग को निष्ठावान डॉक्टर से हार माननी पडी।

"ठीक है, देखेंगे।" वे बोले, 'शत्रु के कडे पहरे के पार उसे पहुँचाने का माग क्या हो सकता है?"

डॉ० वैथ्यू के चेहरे पर चमक उभर आयी, "यूजीलड की मिशनरी सिस्टर हाल शीघ्र ही बीपिंग जा रही ह। उन पर कोई रोक-टोक न होगी। मैं उन्हे राजी करूँगा कि वे मिस सन को अपने साथ ले जाएँ।" डॉक्टर वैथ्यू ने मानवता का सन्दभ देकर मिस हाल को तैयार किया। अगले दिन जब रोगिणी मिस सन सिस्टर हाल के साथ बीपिंग के लिए रवाना हो रही थी, तब डॉ० बैथ्य की आँखो मे आँसू उमड आये थे, जैसे वह किसी रोगी को नही, अपनी बेटी को विदा कर रहे हो और चेहरे पर थी गर्व की दीप्ति, कतव्य पालन के सतोष का अनिर्वचनीय आनन्द।

48 ताकि घर-घर दीप जले

ऑक्सफोर्ड विश्वविद्यालय के छात्रो मे उस दिन विचित्र जोश था। खुशी के उद्दाम आवेश मे उन्होने विश्वविद्यालय के दरवाजे तोडकर उनकी होली जलाई, नृत्य किया। युवा छात्र हरदयाल यह देखकर चकित हुए, "देश प्रेम का कैसा उन्मादकारी ज्वार है यह!"

ब्रिटिश लोगो द्वारा अफ्रीका मे बोअरो को पराजित करने

की खुशी मे ब्रिटिश छात्र यह हर्षोल्लास मना रहे थे। देशभक्त हरदयाल के चेहरे पर एक दृढ सकल्प उभर आया। स्वतत्र देश के राष्ट्रभक्तिपूर्ण वातावरण ने उन्हे झकझोर दिया, "ठीक है, विदेशी भूमि ही विप्लवी-कम के लिए अनुकूल है, मैं यहाँ आये हुए युवको को स्वातन्त्र्य सघर्ष के लिए तैयार करूँगा।"

एक दिन ऑक्सफोर्ड से लन्दन जाकर उन्होने भाई परमान द से कहा, "भाई जी, भारत सरकार की छात्रवृत्ति के बल पर अध्ययन करना मैं अपने देश का अपमान समझता हूँ। क्यो न इसे ठुकरा दू ?" भाई परमानन्द गभीरतापूर्वक बोले, "इस विषय मे शीघ्रता की नही, धैयपूवक विचार की जरूरत है, हरदयाल जी।" उनकी पत्नी सु दर रानी भी लन्दन मे उनके साथ थी। उन्होने जब पत्नी को यह निर्णय बताया तो वह बोली, "यदि आपने सरकारी छात्रवृत्ति को त्याग दिया तो हमारा निर्वाह कैसे होगा ? अ य कोई साधन भी तो नही है ?'

"कुछ भी हो, रानी !" हरदयाल ने कहा, "जिन डाकुओ (अग्रेजो) के हाथ मेरे देशवासियो के खून से रगे हैं, उनसे रुपया लेना तो अधम है।" श्यामजी कृष्ण वर्मा को जब हरदयाल का यह निर्णय मालूम हुआ तो उन्होने उनके व्यय के लिए धन भेजने की व्यवस्था कर दी। क्रातिकारी हरदयाल पर राष्ट्र प्रेम का ऐसा नशा सवार था कि वह एक पल भी किसी अ य कार्य मे नष्ट करना अच्छा नही समझते थे। सोचते, कोई क्षण मातृभूमि की सेवा के अतिरिक्त तो नहीं बीत रहा, और एक दिन उ हे लगा कि वे ऑक्सफोड की डिग्री के लिए एक वर्ष बेकार मे ही नष्ट कर रहे हैं। बस, यह विचार आते ही

तुरंत विश्वविद्यालय से त्यागपत्र दे दिया और मातृभूमि की सेवा के लिए भारत लौट आये।

"क्यों रानी, तुम मेरे देश सेवा के पथ मे हर सहयोग देने को तैयार हो न ?" एक दिन वे अपनी पत्नी से बोले।

"मैंने कभी आपकी आज्ञा का उल्लंघन किया है भला ?" सुंदर रानी बोली, 'मैं तो सदैव आपके मार्ग मे सहायक ही रही हूँ।"

"तो मुझे आज्ञा दो देवी कि मैं अपना सारा जीवन, इसका प्रत्येक क्षण अब देश को समर्पित कर दूं।" एक क्षण वे करुणार्द्र हो उठे। रुककर बोले, "अब समय आ गया है कि अपना प्रत्येक पल मैं देश को समर्पित कर दूँ।"

सुंदर रानी क्या कहती भला! आज्ञाकारिणी अर्द्धांगिनी ने अपार व्यथा को हृदय मे समेटकर हरदयाल जी को संन्यास की आज्ञा दे दी। सुंदर रानी के प्रथम संतान होने वाली थी। लेकिन इस क्रांतिकारी संन्यासी ने एक बार घर से निकलकर फिर कभी भी अपनी पत्नी और पुत्री का चेहरा न देखा। वे देश भर मे घूम घूमकर ऐसे ध्येयनिष्ठ युवको को तलाश करने लगे जो राष्ट्रीय चेतना के प्रचारक बन सकें। उन्हें ऐसे अनेक युवक मिल भी गये। लाला जी तपस्वी जीवन विताने लगे।

एक दिन भाई परमानन्द ने उनसे पूछा 'आपके इस तप से किसको लाभ होगा—आपको, भारत को या मानव समाज को? क्या आप नया मत चलाना चाहते हैं? यदि नहीं तो गौतम बुद्ध के बजाय आज के युग मे स्वामी विवेकानंद को आदर्श बनाइये। इसी आदर्श की आज भारत और संसार को आवश्यकता है।"

एक बार फिर वैरागी हरदयाल की क्रांति-भावना जाग उठी और वे विश्व भर मे भारतीय स्वतत्रता का शख फूँकने चल पडे। अमेरिका, फ्राम, जमनी, स्वीडन—सर्वत्र भारतीय क्राति का प्रबल उद्घोप करते रहे। सेन फ्रासिस्को से प्रकाशित अपने 'गदर' अखबार मे उन्होने स्वातत्र्य सैनिको के लिए अपील निकाली—"आवश्यकता है भारत मे गदर मचाने वाले वीर सनिको की। वेतन—मृत्यु, इनाम—शहादत, पेंशन—स्वतन्त्रता, युद्धक्षेत्र—भारत।" सचमुच लाला हरदयाल ने विश्वभर मे घूम घूमकर भारतीय स्वतत्रता की अलख जगायी और विप्लव के लिए अनेक युवको को तैयार कर भारत भेजा। जब एक बार किसी ने उनसे पूछा, "सदैव अपने प्रियजनो से दूर क्या कभी इस कठोर साधना मे आप अवसाद अनुभव नही करते, लाला जी?" तब लाला हरदयाल ने जो उत्तर दिया, वह सचमुच उनकी कर्मयात्रा का सही चित्र था। उन्होने कहा, "देश के लिए मरना सरल है मित्र, किन्तु प्रियजनो की स्मृति से भी दूर रहकर जीवित रहते हुए कर्तव्य करते रहने मे ही तो कर्म की सार्थकता है।" और सचमुच हरदयाल अतिम क्षण तक अपने हृदय का सारा स्नेह स्वदेश की मशाल जलाने के लिए ही उडेलते रहे ताकि भारत के अनगिनत घरो का अँधेरा दूर हो सके, घर-घर दीप जल सकें। •

49 आत्मवत् सर्वभूतेषु

सिद्धपुरुष महर्षि रमण का आश्रम। प्रकृति के सान्निध्य मे मनोरम शाति का साम्राज्य। भक्तजन महर्षि के प्रवचन की

तैयारी मे व्यस्त हैं। आश्रम मे पालथी लगाकर शात चित्त बैठने का नियम है। एक अग्रेज महिला भी महर्षि को सुनने आयी है। वह पालथी लगाने मे असमर्थ, पैर फैलाकर बैठ जाती है। भक्तजन और प्रबन्धक उसे टोकते हैं कि यहाँ इस प्रकार बैठना वर्जित है इसलिए वह पालथी लगाकर बैठे। उक्त महिला बडी परेशानी मे पड जाती है। महर्षि रमण प्रवचन-स्थल पर आते हैं तो उन्हे यह दृश्य दीख पडता है। वे कुछ बोलते नही। उनके पैर मे भयकर गठिया का दर्द है, फिर भी आज वे दर्द को पीकर पालथी मे बैठने का प्रयास करते हैं। प्रबन्धक उन्हे ऐसा करने से रोकते हैं कि वे पैर फैलाकर ही बैठे रहे, शरीर को अनावश्यक कष्ट न दें। महर्षि किसी ओर ध्यान न देकर बलपूर्वक पालथी लगाते हैं। बार-बार प्रबन्धको द्वारा ऐसा करने से रोके जाने पर वे कह उठते हैं, "क्या मुझ मे और उस महिला मे आत्मा का कोई भिन्न रूप है? जो नियम उसके लिए है, वही मेरे लिए भी है। प्राणिमात्र की पीडा एक समान है।" भक्त प्रबन्धकगण ग्लानि से विचलित हो उठे। उन्हे अपनी भूल का अहसास हो चुका था। उन्होंने तुरन्त उस भद्र महिला से सुविधापूर्वक बैठ जाने की प्रार्थना की। इसके बाद महर्षि से निवेदन किया कि वे अब अपने शरीर को अनावश्यक कष्ट न दें, और अब महर्षि के मुखमडल पर सरल मुसकान व्याप्त थी।

कोरी ज्ञान चर्चा या प्रवचनो के द्वारा लोगो के हृदय को स्पर्श नही किया जा सकता। ऐसे महामानव लोकमानस पर राज्य किया करते हैं जो प्राणिमात्र के साथ तादात्म्य स्थापित कर लेते हैं और उनके सुख मे प्रसन्न तथा दुःख मे कष्ट अनुभव करते हैं।

गाधी जी के दो पगो के पीछे देश के करोड़ो पग चल पड़ने का भी यही रहस्य था। 'आत्मवत् सर्वभूतेषु' का शाश्वत मंत्र उनके जीवन मे व्याप्त था। मार्च 1947 की घटना है। उन दिनो 'करो या मरो' आन्दोलन चल रहा था। गाधी जी बिहार मे थे। इसी समय एकाएक वायसराय ने उन्हे मिलने का निमंत्रण भेजा। उन्होने मनु बहन को आदेश दिया कि वह रेल के तीसरे दर्जे का एक छोटा-सा डिब्बा देख लें।

मनु बहन ने सामान तो कम-से कम लिया लेकिन डिब्बा ऐसा चुना जो दो भागो वाला था। गाधी जी ने डिब्बे का निरीक्षण किया तो चकित रह गये। बोले, "मनु, तुमने मेरी और अपनी सुविधा के लिए ही दो कमरे ले लिये हैं न, क्या तुमने यह नहीं देखा कि सैकड़ो लोग बाहर दरवाजे पर लटक रहे हैं ? इसी का नाम है अधा प्रेम, जिसमे हम अपने प्रियजनो के स्वार्थ के लिए दूसरो के दुख और असुविधाओ को भूल जाते हैं। ध्यान रहे, अगले स्टेशन पर बाहर लटके लोगो को अन्दर बुला लेना।"

अगला स्टेशन आया। स्टेशन मास्टर आये और गाधी जी ने उनसे दुख प्रकट करते हुए कहा, "हमने दूसरा कमरा खाली कर दिया है। जो लोग बाहर लटक रहे हैं उनको उसमे बैठाइये। तभी मेरा दुख कम होगा।" स्टेशन मास्टर ने बहुत आग्रह किया कि आप इसे खाली न करें, मैं उनके लिए दूसरा डिब्बा लगवाये देता हूँ। गाधी जी ने कहा, "हाँ, दूसरा डिब्बा तो लगवा ही दीजिए लेकिन इसका भी उपयोग कीजिये। दूसरो से अधिक सुविधा उपभोग करने का हमे क्या अधिकार है ?" जब तक उस डिब्बे मे बाहर लटके लोग आ नही गये, गाधी जी

शाल चित्त नही रह सके। उनके अन्दर आने पर ही वे अपने काय मे लग सके।

समता और अपनत्व की यह भावना जीवन मे अद्भुत शक्ति उत्प न कर देती है और ऐसा तेज प्रखर जीवन ही अपने पीछ चलने वाले करोडा अनुयायिया की प्रवल प्रेरणा वनता है।

50 वतन पर मिटने वालो का

23 अक्टूबर, 1962 अचानक दो सौ चीनियो ने जूम ला चौकी (नेपाल) पर हमला कर दिया। चौकी पर तैनात सूबेदार जोगिन्दर सिह ने सिख जवानो के साथ रण शौय का ऐसा परिचय दिया कि चीनी सैनिको को भागते ही वना। तीन-तीन बार चीनियो को पराजय की धूल चढाने वाला यह वीर सेनानी उस दिन दुश्मनो के लिए काल बन गया था। अचानक एक गोली सूबेदार जोगिन्दर सिह की जाँघ मे धँस गयी, रक्त की धारा बह निकली, परन्तु मा के वीर लाडले को इतनी फुरसत कहाँ कि वह उधर देखे। उसके चेहरे पर शिकन तक नही आयी। उसकी दृष्टि तो दुश्मन पर थी और हाथो की अगुलिया मशीन गन पर जो लगातार गोली वरसा रही थी। सूवेदार जोगिन्दर सिह के पास थे सौ साथी और चीनी सेना टिड्डी दल के समान विराट। चीनी अफसर ने ऊँचे स्वर मे समपण करने का आदेश दिया किन्तु जोगिन्दर सिह के साथियो ने जवाव दिया गोलियो की वर्षा से। लेकिन सौ सैनिक दत्याकार चीनी सेना से कब तक लडते ? आखिर जोगिन्दर सिह घिर गये। जसे ही उन्हे चीनी सैनिक गिरफ्तार करने के लिए बढे, उन्होंने राइफल पर

सगीन चढाकर दो-तीन चीनियो की छाती मे भोक दी। वे जानते थे कि मौत मेरे सिर पर है लेकिन अन्त तक मातृभूमि के लिए लडने का सकल्प लेने वाला वीर भला चुप क्यो रहता? आखिरी गोली छाती के पार जाने तक वे सात चीनियो को मौत के घाट उतार चुके थे।

किसी देश के ऐसे ही शूरवीर बेटे उसका मस्तक ऊँचा रखते हैं। शस्त्र सज्जित विशाल वाहिनी नही लडती, लडते हैं मातृभूमि के लिए हृदय मे असीम प्यार और रक्त मे शौर्य की ऊष्मा धारण करने वाले उसके वीर पुत्र। ऐसे वीरो के सामने सख्या बल का महत्त्व नही होता। वे मुट्ठी भर भी हुए तो क्या, हजारो शत्रुओ के लिए काफी होते है।

ऐसा ही एक वीर पुत्र था मेजर शैतान सिंह। चूशुल हवाई अड्डे के पास एक चौकी पर तैनात यह बहादुर एक बार इसी मोर्चे पर चीनियो को धूल चटा चुका था। इस बार मुकाबला था चीनी टैंकों, भारी तोपो तथा मेजर शैतानसिंह और उनके जवानो मे। मेजर घायल हो चुके थे। स्वय को घिरा देखकर मेजर ने साथियो को आदेश दिया, मैं अतिम सास तक शत्रु को घेरे रखूगा, सब सैनिक साथी सुरक्षित स्थान पर वापस लौट जायें।" 'मेजर! यह कैसे हो सकता है कि हम आपको घायल छोडकर चले जायें और " उस सैनिक की बात अभी पूरी भी न हो पायी थी कि मेजर ने दृढ स्वर मे कहा, "मैं तो अब बच नही सकता, इसलिए मेरा हुक्म मानो और गोर्चा छोडो ताकि एक भी चोनी आगे न बढ़ सके। मैं इन्हे रक्त की अतिम बूद शेष रहने तक रोके रखूगा।" विवश जवानो को अपने नेता को छोडकर लौटना पडा। कैसी विवशता थी यह,

आज्ञाकारी मजबूर जवानो को अपने नेता को हमेशा के लिए मौत की गोद मे छोडकर आना पड रहा था। उस समय अपनी मौत पर आह भी न करने वाले उन जवानो की आखो मे अविरल अश्रु बह रहे थे। जब तक सारे साथी सुरक्षित वापस न पहुँच गये, मेजर शैतानसिह अकेले ही दुश्मनो को रोके रहे और अन्त मे छाती मे एक गोली धँसने से शहीद हुए।

ऐसे ही शूरवीर पुत्रो के रक्त से स्वतत्रतादेवी का अर्चन होता है। इन बलिदानियो के घर के दीपक बुझते हैं, पत्नियो के सुहाग पुछते है और माताओ की गोद सूनी होती है। तभी देश के विशाल आगन के दीप जल पाते हैं और तभी हम स्वतत्र देश की खुली हवा मे सांस ले पाते हैं।

51 ज़िंदगी के बाद भी

"उठो जागो सघर्ष करो और तब तक विश्राम मत करो, जब तक तुम अपने लक्ष्य पर नही पहुँच जाते।" 20 दिसम्बर, 1902 को मद्रास के 'पचइअप्पा हॉल' मे भारत एकता का सन्देश देते हुए जब भगिनी निवेदिता ने यह आह्वान किया तो श्रोतागण मत्रमुग्ध हो गए। सुदूर इग्लड से यह युवती जीवन की सुख सुविधाएँ छोड पराधीन भारत की सेवा करने आयी थी। क्योकि निरन्तर सत्य का अन्वेषण करते हुए उसे यह आत्मबोध हुआ था कि भारतभूमि ही वह धर्मभूमि है जो चिरसत्य की ओर ले जा सकती है।

आयरलैंड के एक सभ्रात परिवार मे जन्मी यह बाला मिस मारग्रेट भी उसी प्रकार सुनहले सपनो के बीच पली थी जसे भौतिक आकषणो के बीच हर बालक पलता है। वय के साथ जीवन के 'रगीन स्वप्न' भी निखरते जा रहे थे। युवती मारग्रट उस समय 'रेक्सहाम' मे अध्यापिका थी। उसने एक विद्वान और युवा अभियन्ता के साथ अपनी दुनिया बसाने का स्वप्न सजोया। विवाह समारोह की तिथि तय हो गयी। लेकिन विधि के विधान मे मिस मारग्रेट के लिए सुख का छोटा सा नीड बनाने के बजाय करोडो लोगो के सुख की साधना का महान काय लिखा था अत नियति के एक झोके ने उसके महल को चकनाचूर कर दिया। उसका प्रियतम समारोह के एक दिन पूर्व उससे सदव क लिए अज्ञात लोक की यात्रा पर चला गया।

मिस मारग्रेट की घनीभूत व्यथा ने उसको झकझोर दिया। वह जीवन और जगत् के रहस्यो को जानने क लिए आकुल हो उठी। *शाति की खोज की अनवरत यात्रा । एक धम से दूसरे* की ओर—उसे जहा भी प्रकाश की किरण दिखाई देती, हृदय की आकुल पुकार पर उधर ही दौड पडती किन्तु निकट जाने पर मिलता अलघ्य और दुर्निवार अन्धकार। और 10 सितम्बर 1897 के एक शुभ प्रभात मे उसे वह पथ मिल ही गया जिसके लिए वह भटक रही थी। उस दिन लन्दन के एक विशिष्ट अतिथि स्वागत मे उसे विवेकानन्द के दशन हुए। उनके प्रखर तेज और दशन मात्र से मिस मारग्रेट के अनुत्तरित प्रश्नो का समाधान मिल गया। "मैं भारत की सेवा करना चाहती हू, आपके सान्निध्य मे।" मिस मारग्रेट ने कहा। स्वामी विवेकानन्द ने सेवा पथ के कटक, पथ की कठोरता को समझाकर उसे रोकना

चाहा। लेकिन दृढ प्रतिज्ञ मारग्रेट को वे निश्चय से डिगा न सके। भारत आने से पूव स्वामी जी ने भ्रमित पश्चिम को वेदान्त का सन्देश देने का कार्य सौंपा निवेदिता को। एक स्थान पर हताश होकर निवेदिता ने लिखा कि लोग भाषण सुनने हजारो की सख्या मे आते है लेकिन सहायता कोई एक पैसे की भी नही देता। अभावग्रस्त जीवन दूभर हो रहा है। स्वामी जी ने उत्तर दिया, 'अभावो और सघर्षो की गाथा कहकर तुम मुझे द्रविल करने की कोशिश न करो। सेवा पथ स्वय चुना हुआ कांटो का पथ होता है। जिसमे साहस है, वह इस पर चले नहीं तो उसे लौट जाना चाहिए।"

निवेदिता को इन शब्दो ने झकझोर दिया। फिर कभी उसने स्वामी जी से याचना नही की। सेवा क्षेत्र बढता गया। दीन दुखियो के बीच सेवा, पतितो के उत्थान के लिए सघर्ष—यहाँ तक कि निवेदिता स्वय सेवामय हो गयी।

भारत की सस्कृति, नारी की श्रद्धा और जन जन की भक्ति देखकर वे अभिभूत हो गयी। उन्होने व्यथित हो इग्लैंड के लोगो को डाकू बताते हुए लिखा, "भारत अध्ययन मे तल्लीन था, इसी बीच डाकुओ का एक दल आया और उसके देश (भारत) को नष्ट कर दिया भ रत की सेवा के लिए सवस्व समर्पित करने वाली निवेदिता का अतिम विदाई का समय आ चुका था, स्वातिसार से पीडित वे चिरयात्रा की तयारी मे थी। देश के गणमान्य नेता भी इनसे प्रेरणा लेते थे। उनकी अतिम इच्छा पूछने पर उन्होने कहा था—"मेरे पास जो कुछ था वह मातृभूमि का था—जिन्दगी मे भी और जिन्दगी के बाद भी।"

52 · एक जन्म दूसरो के लिए

नरेन्द्र उस दोपहर मे भूखे प्यासे अपने मित्रो के साथ एक स्मारक की छाँह मे खडे थे। सहसा उनका एक मित्र भगवान की अपार करुणा का गीत गाने लगा। नरेन्द्र गरज उठे, "बन्द करो यह गाना।" उन्होने आक्रोशपूर्वक कहा, 'जिनके पास वभव के भडार हैं, जिनके माता-पिता घर भूखो नही मर रहे हैं, उन्हे ऐसी कल्पनाएँ मधुर जान पडती है।" मन की सारी व्यथा समेटते हुए वे बोले, "एक समय था जब मुझे भी ऐसा लगता था लेकिन अब जब जीवन की कठोरता मेरे सामने है मुझे यह क्रूर मजाक जैसे सालता है।" स्थिति ऐसी ही विकट थी। नरेन्द्र के पिता की मृत्यु के बाद उसके भाई, बहन और मा शोचनीय स्थिति मे थे। उसकी ईश्वरीय सत्ता मे आस्था डोल गयी थी। रामकृष्ण परमहस के कुछ शिष्यो ने उनसे उलाहने के स्वर मे पूछा, "आप नरेन्द्र को असीम प्यार करते हैं, उसमे दिव्य शक्ति का आभास पाते हैं, लेकिन वह तो घोर नास्तिको जैसी बातें करता है आजकल।" रामकृष्ण सरल मुसकान बिखेरते हुए बोले, "नरेन्द्र को असीम दुख और क्लेश के सम्पर्क मे आने दो, फिर यही रूपान्तरित होगा। वह मानवीय दुख पीडा से अभिभूत हो उठेगा और अपने देशवासियो के दुख दैन्य के समग्र मे वह एक ऐसा चकमक पत्थर होगा जिसकी टकराहट से सारी आत्मा प्रज्वलित हो उठेगी।" परमहस बाल सुलभ प्रफुल्लता से बोल उठे, "और फिर इसी आधारशिला पर उसकी सारी महत्वाकाक्षाए, शक्तियाँ और कामनाएँ मानव मात्र की सेवा के व्रत मे लय हो जाएँगी।" सचमुच एक दिन ऐसा

आया जब नरेन्द्र विवेकानन्द बन गया। उस दिन जब वे एक शिष्य के साथ किसी सूक्ष्म दर्शन तत्त्व पर विचार कर रहे थे तो विख्यात बगला नाटककार गिरीश वहा आए। उन्होने पूछा, 'अच्छा नरेन्द्र, मैं तुमसे एक प्रश्न पूछता हूँ—भला तुम्हारे वेद और वेदान्त मे सुधात जनो के लिए दिन प्रतिदिन अन्याय और दुखो से पीडित मानवो के लिए भी कुछ उपाय है ? एक माँ जो पचास जनो को नित्य खिलाती थी आज उसके बच्चे तीन दिन से भूख से तडप रहे है।" गिरीश ने और उत्तेजित होते हुए कहा, "अमुक परिवार की स्त्री को गुडो ने अपमानित कर, यन्त्रणा दे देकर मार डाला।" गिरीश की वाणी आग उगल रही थी, "नरेन्द्र, मैं तुमसे पूछता हूँ तुमने वेदो मे इन सब पापो के निवारण की कोई व्यवस्था देखी है ?" विवेकानन्द सुन न सके यह सब। उनकी आँखो मे आँसू भर आये। उनको छिपाने के लिए वे उस कमरे से निकल गये। अब गिरीश मुसकरा उठे। एक शिष्य से बोले, "देखो तुमने प्रत्यक्ष देखा न, तुम्हारे गुरु का हृदय कितना विशाल है। मैं उनके पाडित्य के कारण नही, मानवता के प्रति उनकी इसी असीम करुणा के कारण उनका आदर करता हूँ।" थोडी देर बाद विवेकानन्द लौट आए और शिष्य सदानन्द से बोले, देशवासियो का दुख दारिद्रय देखकर मेरा अन्तर रो उठता है।" वह शिष्य की ओर उन्मुख होकर बोले, "कुछ करो सदानन्द, कम से कम एक सहायता केन्द्र ही खोलो, हमारे चारो ओर तो पीडा का साम्राज्य न रहे।" उन्होने करुणाभिभूत होकर गिरीश से कहा, 'आह गिरीश ! मेरा मन कहता है कि जगत् के दुख निवारण के लिए, किसी का रचमात्र क्लेश मिटाने के लिए यदि मुझे सहस्र बार जन्म लेने का दड भी

भोगना पडे तो सहष भोगूगा।" वे अपने शिष्यो की ओर अभिमुख होकर भावावेश मे बोले, "तुम सब मेधावी बालक हो, और अपने को मेरा शिष्य कहते हो। बताओ तो तुमने क्या-क्या काम किया है ?" हृदयस्पर्शी आह्वान करते हुए उन्होने कहा, "एक जन्म दूसरो को दे डालना क्या तुमसे न होगा ? ध्यान, अभ्यास इत्यादि अगले किसी जन्म मे कर लेना। यह शरीर पर-सेवा मे अर्पित कर दो, तब मैं समझूगा कि तुम्हारा मेरे पास आना सार्थक हुआ है।" विवेकानन्द के करुणासिक्त हृदय का आह्वान शिष्यो को अभिभूत कर गया और उन्होने उसी दिन समर्पित भाव से उस महान सन्यासी द्वारा निर्दिष्ट मानव-सेवा-पथ मे स्वय को समर्पित कर दिया।

53 आस्था के आशा-दीप

पश्चिमी जर्मनी का गुन्सबाख गाँव। दो किशोर आपस मे मल्ल-युद्ध कर रहे थे। उनमे से एक सम्पन्न पादरी का पुत्र था और दूसरा एक श्रमिक का बेटा। पादरी के बेटे ने श्रमिक के पुत्र को पछाड दिया। वह गर्वोक्ति से बोला, "भला तू मुझे हरा सकता है ! बडा आया मुझसे लडने वाला !" पराजित बालक मन से नही हारा था, वह बोला, "काश, मुझे भी तेरी तरह पौष्टिक भोजन मिला होता तो मजा चखा देता !" और फिर उसने बताया कि गरीबी के कारण पौष्टिक भोजन तो दूर, उन्हे जीने की कोई भी सुविधा जुटाना कितना मुश्किल होता है। ऐसी घटनाएँ प्राय रोज होती रहती है, लेकिन बालक अल्बर्ट श्वाइत्जर के मन-मस्तिष्क को इस घटना ने झकझोर दिया।

दुखी मानवता की पीडा को दूर करने के मनस्ताप ने उसके मन-मस्तिष्क को व्यथित कर दिया—'मेरे जीवन का लक्ष्य वही होना चाहिए जिससे अधिकतम पीडित मानवो को पीडा मुक्ति मिल सके।' यह जीवनदृष्टि मिलते ही अल्बर्ट ने निश्चय किया कि वह डॉक्टर बनकर जगली अफ्रीकी लोगो के बीच जायेगा जिन्हें गोरो ने गुलाम बनाकर दासता की मार से रुग्ण-जर्जर भी बना दिया है, वह इस पाप का प्रक्षालन करेगा। स्ट्रासबर्ग विश्वविद्यालय मे चिकित्साशास्त्र का अध्ययन करते हुए जब एक दिन हेलन ब्रेसला नामक युवती ने सारा सकोच मिटाकर कहा, "अल्बर्ट, मैं तुम्हारी जीवन-सगिनी बनना चाहूँगी, क्या तुम इसे स्वीकार करोगे ?" तब अल्बर्ट एकाएक स्तब्ध रह गया था। उसने सोचा भी नही था कि अफ्रीका के जगली लोगो के बीच सेवा के कटकाकीर्ण पथ मे उसके साथ कभी कोई दूसरा सगी साथी जा सकेगा—फिर जीवन-सगिनी की तो कल्पना भी कैसी ? हेलन अल्बर्ट की मनस्थिति को भाँप गई, उसे उसके लक्ष्य का आभास हो चुका था। उसने कहा, "मैं नर्सिग का प्रशिक्षण प्राप्त करके वहाँ आपका हाथ ही बँटाऊँगी, सेवा-पथ मे बाधक नही बनूँगी।" अल्बर्ट स्वाइत्जर भावविभोर हो उठे थे, "मैं ऐसी जीवन-सगिनी को पाकर स्वय को धन्य समझूगा।" और फिर एक दिन वे दूरस्थ अफ्रीकी कस्बे लेम्बारेन मे थे। अपने हाथो से झाड-पोछकर इस नवदम्पति ने कबूतरो के घोसलो, पुराने जालो और वर्षों के सीलन भरे एक कमरे का साफ किया। वैभव मे पले दोनो स्वप्नदर्शियो की कठोर परीक्षा शुरू हो चुकी थी। दवा और उपचार का नाम भी न जानने वाले जगली अफ्रीकी अल्बर्ट की सेवा-सुश्रूषा और उपचार से स्वस्थ

होने लगे। उनके लिए यह सब एक जादू था कि बीमारी ठीक भी होती है। वे अल्बर्ट को जादूगर कहने लगे—जादूगर मसीहा। इसी बीच अल्बट श्वाइत्जर ने अपनी अनुभूतियों को सँजोकर एक पुस्तक लिखी—'जीवन के प्रति सम्मान'। उनके सेवा-कार्य की कीर्ति विश्वभर में फैल चुकी थी। 1952 में उन्हें शांति के लिए विश्वविख्यात नोबल पुरस्कार मिला, तब एक अफ्रीकी मित्र जोसेफ ने कहा, "अल्बट, तुमने जीवन भर काफी कष्ट सहे, अब इस विशाल पुरस्कार की राशि से आरामपूर्वक जिन्दगी गुजार सकोगे।" अल्बट श्वाइत्जर मुसकराये, "मित्र, यदि वैभव-विलास की कामना मुझे होती तो इस पथ को स्वीकार ही क्यों करता?" यह कहते उन्होंने इस विशाल राशि को लेम्बारेन में एक कुष्ठ सेवा केन्द्र स्थापित करने हेतु लगा दिया। अपनी तरफ आश्चर्य से देखते हुए मित्र से बोले "मेरा एक ही लक्ष्य है जोसेफ—जीवन के प्रति सम्मान—प्राणिमात्र की सेवा।"

निश्चय ही हिंसा और विध्वंस की होड़ में लगे विश्व के बीच आज भी अल्बट श्वाइत्जर जैसे प्रकाश-स्तम्भ मानवता की आस्था के आशा-दीप बने हुए हैं।

54 कर्तव्यनिष्ठा की अग्नि-परीक्षा

स्वतन्त्रता के लिए 'करो या मरो' का नारा उस समय बुलन्द था। अंग्रेजी सरकार सतर्क और भयभीत थी इसलिए जेल-निरीक्षकों को कड़े आदेश दे दिये गये थे कि वे कड़ी देख-रेख और कठोर अनुशासन बनाए रखें। जेलों के नियमानुसार शाम को किसी स्थान का सांकेतिक नाम निश्चित कर दिया जाता

ताकि कोई भी व्यक्ति छद्मवेश मे वहाँ प्रवेश न कर सके। जिन अधिकारियो, कमचारियो और सन्तरियो की रात की ड्यूटी लगाई जाती, उन्हे निश्चित सकेत चुपचाप बतला दिया जाता ताकि वे ड्यूटी पर नियुक्त सिपाही को बताकर आ जा सकें।

मियाँवाली जेल मे (अब पाकिस्तान मे) एक रात वहा के जेल सुपरिटेंडेंट निरीक्षण करते हुए घूम रहे थे, हर सन्तरी को उस रोज का निश्चित सकेतचिह्न बताते हुए बढ रहे थे। एक सन्तरी को उन्होने गलत सकेत बताया तो सन्तरी उच्च स्वर मे गरजा, "खबरदार, आगे न बढना वर्ना गोली मार दूगा।' एक अदना-से सन्तरी ने जेल सुपरिटेंडेंट को चुनौती क्या दी कि आफत आ गई। उन्होने तुरन्त खतरे की सीटी वजा दी। इसे सुनते ही जेल की खतरे की घटी बज उठी। इस आवाज को सुनते ही तुरत प्रत्येक सिपाही खतरे के स्थान पर पहुँच गया। जेल सुपरिटेंडेंट के आदेश से उक्त सन्तरी को गिरफ्तार कर लिया गया। मुकदमे के दौरान जेलो के सर्वोच्च अधिकारी आई० जी० ने कहा, "तुमने बहुत बडा अपराध किया है किन्तु तुम्हारी पुरानी सेवाओ का खयाल रखते हुए तुम्हे माफ किया जा सकता है, लेकिन तुम्हे अपनी बेअदबी के लिए लिखित माफी माँगनी होगी और भविष्य मे ऐसी भूल न दोहराने की शपथ लेनी होगी अन्यथा छ माह की सख्त कैद भुगतनी पडेगी।" सजा की बात सुनकर वह सन्तरी एक बार काप उठा लेकिन दूसरे ही क्षण दृढतापूवक शात स्वर मे बोला, "हुजूर, मैंने कोई कसूर नही किया है, अत माफी नही माँग सकता।" "अपने बडे अफसर को गोली मारने के लिए तैयार हो जाना तुम्हारी नजर

मे कोई कसूर नही है ?" आई० जी० ने उसे पैनी दृष्टि से घूरते हुए पूछा। "मेरी यह हिम्मत कहाँ साहब, कि अपने अफसर के खिलाफ कोई गुस्ताखी करूँ, लेकिन उन्होने ही यह फर्मान दिया था कि ड्यूटी का मुस्तैदी से पालन करो।" सन्तरी ने आदरपूर्वक उत्तर दिया। बहुत समझाने पर भी उस सन्तरी ने माफी नही मागी इसलिए उसे छ माह के कठोर कारावास की सजा सुनाकर अदालत उठ गई। उसे जेल के सीखचो मे बन्द कर दिया गया। उसकी वृद्धा मां, रुग्ण पत्नी और बच्चे बिलख-बिलखकर रोने लगे, लेकिन वह अटल कर्तव्यनिष्ठा के साथ सजा भुगतने के लिए अपने निश्चय पर डटा रहा।

थोडी देर बाद आई० जी० और जेल सुपरिटेंडेंट सन्तरी की कोठरी मे पहुँचे। कर्तव्यनिष्ठा पर अविचल रहने के लिए पुरस्कृत करते हुए उन्होने उसकी कमीज पर हवलदारी का बिल्ला लगा दिया। सन्तरी अचानक इस परिवर्तन पर चकित हुआ। आई० जी० ने उसकी पीठ थपथपाते हुए कहा, "यह सारा अभिनय अनुशासन के परीक्षण के लिए किया गया था। इसमे एकमात्र तुम खरे उतरे इसलिए तुम्हे पदोन्नत किया गया है।" उस क्षण सन्तरी ने अनुभव किया कि अग्नि-परीक्षा से तपकर निकले स्वर्ण की आभा पहले से भी द्विगुणित हो गई है।

55 ऐसे बहती है पवित्रता की गगा

चन्द्रगुप्त मौर्य के शासनकाल मे उस वर्ष बहुत सर्दी पडी। सम्राट ने मन्त्रिमडल के साथ बैठकर निश्चय किया कि विश्वस्त अधिकारी की देख-रेख मे अभावग्रस्त प्रजाजनो को कम्बल बाँटे

जाएँ। कवल बाटे जाने लगे, लेकिन साथ ही यह भी समाचार मिल रहे थे कि चोरो ने कम्बलो की चोरी का व्यापक अभियान चला रखा है। अधिकारी परेशान थे। प्रधान अमात्य चाणक्य ने चन्द्रगुप्त से कहा, "अब मै स्वय कम्बलो के वितरण की व्यवस्था देखूगा।" सम्राट चन्द्रगुप्त चकित-से बोले, "आचाय, आप करेंगे यह कष्ट? लेकिन उससे क्या समस्या हल हो जायेगी?" आचार्य चाणक्य मुसकराकर रह गये, "समय ही इसका उत्तर देगा।"

आचाय चाणक्य की कुटिया मे निधनो को वाटे जाने वाले कम्बलो का ढेर लगा था। चोरो को यह पता लगा तो वे रात्रि को उनकी कुटिया पर पहुँचे। कुटिया के द्वार पर पहुँचकर उन्होने देखा कि आचाय और उनकी माता जमीन पर चटाई बिछाकर पुराने कम्बल ओढे हुए सो रहे हैं। पुराने कम्बल जीर्ण-शीण, बीच बीच मे फटे थे जिसके कारण आचार्य चाणक्य और उनकी मा ठड से सिकुडे हुए थे। एक ओर नये कम्बलो का ढेर लगा था। चोरो को आश्चय हुआ कि इतने कम्बलो के ढेर के बावजूद वे इन्हे ओढ क्यो नही रहे हैं। वे इसे रहस्य समझकर चकित विस्मित थे। आखिर उन्होने आचाय चाणक्य को जगाकर कहा, 'आचार्य, क्षमा करें, हम कम्बलो की चोरी करने आए थे परन्तु कम्बलो के इतने ढेर के बावजूद आप इस प्रकार सर्दी से ठिठुर रहे है, हम जानना चाहते है, इसके पीछे क्या रहस्य है?"

आचार्य ने मन्द मुसकान के साथ उत्तर दिया, "ये कम्बल उन निर्धनो के लिए है जिनके पास इनका अभाव है। इन पर केवल उन्ही का अधिकार है। यदि मैं ओढता तो मैं भी तुम्हारे समान ही चोर कहलाता।"

चोरी करने के लिए आए उन व्यक्तियो की आँखें खुल गई। उन्होने क्षमायाचना करते हुए भविष्य मे कभी चोरी न करने की शपथ खायी। आचार्य चाणक्य जैसे निस्पृह प्रधान अमात्य के कारण ही चन्द्रगुप्त मौर्य के शासन मे सुख-समृद्धि और समता का साम्राज्य था। सर्वोच्च शासको के आदर्श की प्रेरणा ही गगा की भाँति उच्च शिखर से प्रत्येक प्रजाजन के मन को पवित्र करती हुई बहती रहती है।

56 जब राजहठ को झुकना पडा

हैदराबाद की सडको पर उस दिन एक धनाढ्य व्यक्ति की शवयात्रा निकल रही थी। शव के ऊपर न्योछावर करके सिक्के लुटाये जा रहे थे। पैसे बटोरने वालो को भीड भी कम न थी। शवयात्रा मे चल रहे एक व्यक्ति की नजर सहसा पैसा बटोरने वाले एक भद्र पुरुष पर पडी। अकस्मात उसे अपनी आँखो पर विश्वास ही नही हुआ। उसने उस दिव्य मूर्ति को फिर ध्यान से देखा। अन्य साथियो को भी बताया—"देख रहे हैं आप उस भद्र पुरुष को, जो जमीन पर से पैसे बटोर रहा है? वे हैं पडित मदन-मोहन मालवीय। देश के महान सपूत, लोकनेता।" और कहने वाले का कण्ठ रुँध गया था।

मालवीयजी को भला कौन नही जानता था! शवयात्रा मे शामिल अनेक व्यक्तियो ने उन्हे विनम्र प्रणाम किया। वे लज्जित स्वर में बोले, "देश और मानवता के लिए अपना सर्वस्व त्याग देने वाले महामना मालवीयजी को आज ये शव-पुष्प (पैसे) चुनने की क्या जरूरत पड गयी?" उपस्थित भद्रजनो

ने पूछा, "पडित जी, हमें आज्ञा कीजिए, हैदराबाद की जनता इतनी कृतघ्न तो नही है कि एक समर्पित देशभक्त को यह काम भी करना पडे।"

पडित जी सहज मुसकान बिखेरते हुए बोले, 'काशी से आया था कि निजाम हैदराबाद से विश्वविद्यालय के लिए प्रचुर धन ले जाऊँगा। अतुल सम्पदा के स्वामी से काफी कुछ धन मिलेगा। लेकिन उन्होने इनकार कर दिया है।" मालवीयजी बोले, "अब आप ही बताइये, क्या मैं काशी खाली हाथ जाऊँगा ? वहाँ कुछ जवाब तो देना ही होगा कि हैदराबाद से क्या लाया हू।" उन्होने सरल मुसकान से कहा, "निजाम भले ही न दें, हैदराबाद मे तो लेकर ही जाऊँगा। इसलिए सोचा, ऐसे ही इकट्ठा कर लू।" भद्रजन मालवीयजी को आदर-सहित अपने साथ ले गये। निजाम हैदराबाद के पास पूरी बात पहुँचाई गई—यह तो समूचे हैदराबाद का अपमान होगा कि मालवीयजी इस प्रकार खाली जाएँ। धर्मांध निजाम भी पिघल गया। उसे झुकना पडा और उसने महामना मालवीयजी को वाछित धन देकर सम्मान-सहित विदा किया। समाज के लिए अपने सपूर्ण अह को गला देने वाले मालवीयजी के सम्मुख कुबेर को भी अपने द्वार खोलने पडे।

57 ताकि क्राति की मशाल जले

"कुछ दिनो मे ही ये दोनो इतिहास-पुरुष और देश की सपत्ति हो जायेंगे और तब सिर्फ याद ही बाकी रह जायेगी।" क्रान्तिकारी नेता चद्रशेखर आजाद ने भगतसिंह और

बटुकेश्वर दत्त के एसेम्बली मे बम फेंकने के निर्णय पर गभीरतापूर्वक कहा था। क्रान्तिकारी दल ने निश्चय किया था कि अग्रेजी सरकार की अन्यायपूर्ण नीति का पर्दाफाश करने और भारत भर मे क्रान्तिकारियो का जीवन-दर्शन प्रचारित करने के लिए एसेम्बली मे धमाका करना जरूरी है। उन्होने यह भी निश्चय किया था कि विस्फोट के बाद गिरफ्तारी देकर वे मुकदमे की कार्यवाही मे अदालत को अपना प्रचार-मच बनाएँगे और इस तरह उनके सिद्धान्तो का अच्छा प्रचार हो जायेगा। 8 अप्रैल 1929 का दिन था। भगतसिंह और दत्त एसेम्बली की गैलरी मे मौजूद थे। जार्ज शुस्टर ने ज्यो ही सूचना दी कि दोनो (जनविरोधी) विधेयको को महामहिम वायसराय ने अपने विशेषाधिकार द्वारा स्वीकृत कर लिया है, उसी समय भगतसिंह और दत्त खडे हो गए। दोनो ने एक एक बम फेंका। एसेम्बली मे भगदड मच गई। जार्ज शुस्टर अपनी डेस्क के नीचे छिप गया। अन्य लोग भी भागे। भगतसिंह और दत्त के नारो से एसेम्बली भवन गूज उठा, "इनकलाब जिन्दाबाद ! साम्राज्यवाद का नाश हो !" और फिर उन्होने एक पर्चा बाटा जिसका साराश था—"हम मनुष्य के जीवन को पवित्र समझते हैं। हम मानव रक्त बहाने के लिए अपनी विवशता के लिए दुखी हैं, परन्तु क्रान्ति द्वारा सबको समान स्वतन्त्रता देने और मनुष्य द्वारा मनुष्य के शोषण को समाप्त कर देने के लिए क्रान्ति के अवसर पर कुछ न कुछ रक्तपात अनिवार्य है।' और उसके बाद भगतसिंह और दत्त ने आत्मसमर्पण कर दिया। मुकदमे का नाटक शुरू होने पर भगतसिंह प्रतिदिन अदालत मे क्रान्ति-दर्शन समझाने के लिए एक भाषण देते। विश्व भर मे यह विचित्र

मुकदमा विख्यात हो गया। दुनिया भर से मुकदमे की सहायता के लिए चन्दा आने लगा। पोलैंड की एक महिला ने भी रुपये भेजे और मुकदमा लडते रहने का आग्रह किया। आखिर मुकदमे के नाटक के बाद 7 अक्तूबर को जब भगतसिंह को फासी की सजा सुनाई गई तो उसने कहा था, "मेरी शहादत से क्रान्ति की वह मशाल जलेगी जो शायद जीवित रहने से न जलती। मेरे हँसते हँसते फाँसी पाने की सूरत हिन्दुस्तानी माताएँ अपने बच्चो के भगतसिंह बनने की आरजू किया करेंगी। और देश के लिए बलिदान होने वालो की तादाद इतनी बढ जायेगी कि विशाल साम्राज्यवादी ताकत क्रान्ति की आवाज को रोक नहीं पायेगी।"

निश्चित समय पर 23 मार्च को साय सात बजे जब भगतसिंह फासी के फदे की ओर बढे तो उन्होने मुसकराकर वहाँ उपस्थित मजिस्ट्रेट से कहा—"आप बहुत भाग्यवान हैं, श्रीमन! आज आपको अपनी आँखो से यह देखने का अवसर मिल रहा है कि भारतीय क्रान्तिकारी कैसे खुशी के साथ आदर्शो के लिए मृत्यु का आलिंगन कर सकते हैं।"

58 कठिन कसौटी पर

इग्लैंड का स्टुवर्ड वशीय राजा जेम्स द्वितीय पदच्युत किये जाने के बाद हताश होकर निर्वासित जीवन बिता रहा था। अब राजसिंहासन पर विलियम तृतीय विद्यमान था। जेम्स को अपनी अकर्मण्यता और अकुशलता के कारण ही गद्दी से हाथ धोना पडा था किन्तु अब भी उसे अपने कुछ वफादार साथियो और अनुचरो पर भरोसा था कि वह उनके बल पर

सिंहासन हथिया लेगा। निर्वासित राजा जेम्स की गोष्ठी मे नित नई नई मत्रणाएँ चलती रहती। वह दिन भी निकट आ पहुँचा जब सिंहासनासीन राजा जेम्स के विरुद्ध षड्यत्र की योजना पूण हुई। विद्रोह से सम्बन्धित सभी नक्शे और गुप्त कागजात जेम्स के वफादार धनी मित्र के पास रखे गये। किन्तु विलियम तृतीय जितना दक्ष प्रशासक और जागरूक राजा था, उतना ही नीति-निपुण था। वह जानता था कि पदमुक्त राजा जेम्स और उसके वफादार साथी इतनी जल्दी निराश होकर नही बैठ जायेंगे बल्कि वे विद्रोह के षड्यत्र मे सक्रिय रहेगे। इस कारण विलियम ने जेम्स के प्रत्येक अनुचर और साथी के पीछे जासूस लगा रखे थे जो प्रतिक्षण उनकी गतिविधियो पर नजर रखते थे। एक दिन जासूसी ब्यूरो के प्रमुख ने विलियम को सूचना दी कि षड्यत्रकारी सक्रिय है और सत्ता हथियाने की योजनाएँ आकार ले रही है। "ठीक है।" विलियम ने ब्यूरो के प्रमुख से कहा, "उन पर तब तक हाथ न डाला जाय जब तक षड्यत्र के पूरे साक्ष्य उपलब्ध न हो जाएँ।" आखिर षड्यत्र की पूरी योजना बन गई। आगामी चौबीस घटो के अन्दर सत्ता-परिवतन का नाटक पूण होने वाला था। जेम्स के धनी मित्र के पास से षड्यत्र के समस्त गुप्त कागजात पकडे गए। पदभ्रष्ट राजा जेम्स के धनी मित्र को बदी बनाकर विलियम के सम्मुख पेश किया गया। जेम्स के धनी मित्र के मृत्यु-भय से होश उड गए। उसे कोई सदेह नही था कि उसे प्राणदड दिया जायेगा।

"आखिर तुमने षड्यत्र मे भाग क्यो लिया?" विलियम ने शात स्थिर स्वर मे उस व्यक्ति से पूछा।

मृत्यु निकट देखकर उसने एक क्षण साहस बटोरा और

हृदय का सत्य कहना ही उचित समझा। निश्चयात्मक मृत्युदंड की कल्पना ने उसमे दिव्यता का संचार कर दिया था। वह बोला, 'राजा जेम्स मेरा परम मित्र है। उसके मुझ पर अनेक उपकार है। मेरा यह नैतिक कर्तव्य था कि अपने प्राणो को संकट मे झोककर भी मैं उसकी मदद करूँ।"

राजा विलियम जेम्स के विश्वस्त मित्र के इस कथन पर मंद मुसकरा उठा। उसने षड्यंत्र सम्बन्धी कागजो को निकट ही जलती मोमबत्ती की लौ छुआई और भस्म कर दिया। विलियम के राजदरबारी हतप्रभ रह गए। जासूसी ब्यूरो के प्रमुख के चेहरे पर विचित्र विस्मय की रेखा उभर आयी। राजा विलियम ने सबको लक्ष्य कर कहा, "जो व्यक्ति अपने भूतपूर्व स्वामी के प्रति निस्वार्थ भाव से प्राणो को संकट मे डालकर भी वफादारी निभाने की तैयारी रखता हो, वह वध्य नहीं अपितु नरश्रेष्ठ है, सम्माननीय है। ऐसे व्यक्ति को तो पुरस्कृत कर मित्रता की याचना की जानी चाहिए।"

षड्यंत्रकारी मे भी महानता खोजने वाले गुणग्राही राजा विलियम के प्रति जेम्स का साथी नतमस्तक हो उठा। विलियम के दरबारियो मे जहा उसकी गुण ग्राहकता और सौजन्य के कारण आस्था दृढ हुई, वही विरोधियो की षडयंत्रकारी ज्वाला भी पश्चाताप के जल से शात हो गई।

59 स्वत्व का अभिमान

एक दिन ईश्वरचन्द्र विद्यासागर कलकत्ता प्रेजीडेन्सी कालेज के अंग्रेज प्रिंसिपल के कमरे मे किसी काम से गए। अंग्रेजियत के दर्प

से प्रिंसिपल मेज पर पैर फैलाये बैठा रहा और उपेक्षापूर्वक विद्यासागर जी से बातचीत करता रहा। सयोगवश कुछ समय के उपरान्त इस अग्रेज प्रिंसिपल को विद्यासागर के कमरे मे आना पडा। तब विद्यासागरजी ने भी मेज पर पैर पसारे हुए ही उसका स्वागत किया। वे भी उसी प्रकार उपेक्षापूर्वक बैठे बातें करते रहे। अग्रेज प्रिंसिपल को यह बहुत बुरा लगा। उसने प्रबन्ध समिति के अधिकारियो से विद्यासागर के असभ्य व्यवहार की शिकायत की। ईश्वरचन्द्र विद्यासागर की पेशी हुई और उनसे जवाब मागा गया। विद्यासागर ने कहा, "प्रिंसिपल महोदय सभ्य अग्रेजी समाज के प्रतिनिधि हैं अत मैंने उनके 'सभ्य व्यवहार' का अनुकरण करके ही अपना व्यवहार निर्धारित किया है। आखिर हम हिन्दुस्तानियो को सभ्यता का मापदड सभ्य अग्रेजो' से ही तो अपनाना होगा।"

विद्यासागर के बेजोड उत्तर को सुनकर अग्रेज प्रिंसिपल को अपनी भूल स्वीकार करनी पडी। विद्यासागर ने अनुभव किया था कि अग्रेज भारतीयो को हीनदृष्टि से देखने के कारण अपमानजनक व्यवहार करते है। शासक दर्प से चूर जाति भारतीयो का अपमान करें, इसे वे सहन नही कर पाते थे, अत इसी प्रकार निर्भीकता से भारतीय अपमान का बदला चुकाते।

केवल राष्ट्रीय मान-सम्मान का ही प्रश्न नही, सच्चे देश-भक्त नागरिक मे अपनी सस्कृति, सभ्यता, देश और परम्परा—सभी का अभिमान होना चाहिए। स्वत्व का यह अभिमान रखने वाली जाति ही विश्व मे सम्मानित होती है।

हमारे देश के ऋषिगण भी धमलीन होकर कभी स्वाभिमान से विमुख नही रहे। ऐसे ही दिव्य पुरुष थे महर्षि दयानन्द।

उनकी यश-सुरभि भारत के कोने कोने में फैल चुकी थी। अपार जनसमूह भक्तिभाव से उनके प्रवचन सुनता था।

महर्षि की इस ख्याति और लोकप्रियता की सूचना तत्कालीन गवर्नर जनरल लार्ड नार्थब्रुक तक भी पहुँची। उन्होंने महर्षि को बुला भेजा। भेंट के दौरान लार्ड नार्थब्रुक ने पूछा, "महाराज, अंग्रेजी राज में आपकी सभाएँ शांतिपूर्वक होती हैं। आपको कोई कष्ट तो नहीं ?"

महर्षि ने कहा, "ईश्वर की कृपा से मेरी सभाएँ निर्विघ्न होती हैं और सुप्रबन्ध के लिए मैं आपको धन्यवाद देता हूँ।"

लार्ड नार्थब्रुक ने फिर अपने मन की बात कही, 'फिर महाराज, आप अंतिम प्रार्थना के समय अंग्रेजी राज्य की दीर्घायु के लिए भी प्रार्थना किया करें तो कैसा रहे ?"

इस बात को सुनकर देशाभिमान से स्फूर्त महर्षि दयानन्द तुरन्त गम्भीर हो गये और बोले, "चाहे अंग्रेजी राज्य में अपार सुख सुविधाएँ भी क्यों न हो, वह स्वराज्य से श्रेष्ठ कभी नहीं हो सकता। अतः मैं स्वराज्य के लिए प्रार्थना कर सकता हूँ, अंग्रेजी राज्य के स्थायित्व के लिए कदापि नहीं।"

देशाभिमान से युक्त इस निर्भीक वाणी को सुनकर नार्थब्रुक भौंचक्का रह गया। वह समझता था कि एक धर्म-प्रचारक शायद धर्म के अतिरिक्त अन्य बातों से कोई नाता नहीं रखता। इसके बाद महर्षि पर भी अंग्रेजों की सदैव टेढ़ी नजर रही।

स्वत्व के इस अभिमान के कारण ही कोई संस्कृति और राष्ट्र जीवित रहता है। इसी सत्य को पहचान कर लार्ड मैकाले ने कहा था, 'मैंने भारत को गुलाम बनाए रखने का फार्मूला खोज लिया है और वह है इसकी शिक्षा-पद्धति को नष्ट कर अंग्रेजी

शिक्षा पद्धति लाद देना और सुनियोजित प्रचार द्वारा भारतीयो म अपनी सभ्यता के प्रति हीन-भाव पैदा कर देना।"

राष्ट्रीय उत्कर्ष के लिए देशाभिमान ही नही, अपनी प्रत्येक परम्परा के प्रति आस्था जरूरी है। लन्दन मे गोलमेज कार्फ्रेस के लिए जब गाधी जी को निमत्रित किया गया, तब उनसे आग्रह किया गया कि वे सभ्य पोशाक यानी अग्रेजी पोशाक मे वहाँ आएँ, लेकिन उन्होने इस प्रस्ताव को यह कहकर ठुकरा दिया कि मैं करोडा भारतीयो का प्रतिनिधि हूँ अत उन्ही के वेश मे यहा आऊँगा। आखिर उनकी शत माननी पडी।

विश्व मच पर उसी देश और जाति का सम्मान होता है जिसके पास अपना जीवन दशन है, अपने मूल्य हैं और उसके वासियो मे है उनके प्रति अटूट सम्मान। श्रेष्ठ परम्पराओ से सम्पन्न भारत के पुत्रो ने सदैव स्वत्व सरक्षण की राह दिखाई है।

60 साहस और जातीय सरकार

जीवन पथ के किसी भी विकट माग पर प्राणो को जान-बूझकर सकट मे डालने वाले वीर पुरुष साहसी कहलाते हैं। ऐसे ही साहस के धनी महामानवो के कारण मानवता गौरवान्वित हुई है। सप्टि का विकास साहस की कहानी है।

साहस नितान्त व्यक्तिगत जीवन-यात्रा मे भी प्रकट हो तो वह महान कतव्य-पथ के लिए प्रेरणा का मत्र बनता है। साहस के ऐसे ही जीवन्त प्रतीक थे सरदार पटेल। एक बार उनकी बगल मे ऐसा भयकर फोडा निकला कि किसी उपचार से ठीक

होने मे न आया। अन्त मे किसी ने बताया कि यह केवल गर्म लोहे से दागने से ठीक हो सकता है। सरदार पटेल उस समय वकालत करते थे। घर पर दागने वाले नाई को बुलाया गया। उसने लोहे को लाल गम दहका लिया। घर के लोग भयभीत हो उठे कि ऐसी यातना कैसे सहेगे सरदार ! लेकिन सरदार पटेल के चेहरे पर कोई शिकन न थी। नाई ने लोहे की लाल दहकती छड धीरे से सरदार पटेल के फोडे को छुआ दी।

सरदार कडककर बोले, "तुम घबराते हो तो लाओ छड मुझे दो।" और उन्होने लाल दहकती छड लेकर तुरन्त फोडे के चारो ओर घुमा दी। रक्त और पीव की धारा बह निकाली। सरदार के इस साहस पर सभी चकित रह गये।

व्यक्तिगत जीवन मे साहस ही आगे चलकर राष्ट्रीय जीवन मे स्थायी सस्कार का रूप धारण करता है। जनवरी 1941 मे यरवदा जेल मे बन्दी सरदार ने साहस की इस वृत्ति का परिचय दिया था। उस दिन जेलर ने सरदार पटेल और उनके साथी राजनीतिक बन्दियो से कहा, "आज मच्छरदानियाँ नही मिल पायेंगी क्योकि पुरानी मच्छरदानियाँ फट गयी हैं और नयी आने मे समय लगेगा।"

सरदार पटेल गरज उठे, "मच्छरदानियाँ फट गयी हैं, तो बाजार से तुरन्त नयी लाओ। क्या मैं यहा अपनी इच्छा से आया था ? यदि यहाँ मच्छरदानी नही है तो जेल का दरवाजा खोल दो मैं चला जाऊँगा। जब मच्छरदानिया होगी, फिर आ जाऊँगा।" और फिर सरदार अपने साथियो की तरफ घूमे और आवेश मे गरजे, "मैं पूछता हूँ जब इनके पास हमे जेल मे रखने के लिए मच्छरदानियो का भी प्रबन्ध नही है तो यहाँ क्या

रखा है ?"

जेलर सरदार पटेल की आवेशपूर्ण मुद्रा से काँप उठा और भागकर सुपरिटेंडेंट के पास गया। एक घटे के अन्दर जेल मे नयी मच्छरदानिया आ चुकी थी।

ऐसे ही साहस के धनी थे महात्मा गाधी। उन दिनो खबर मिली कि चम्पारन मे नीलहे गोरे वहाँ के किसानो पर भारी अत्याचार करते हैं। गाधी जी ने जनता मे जागरण का शख फूक कर शक्ति का सचार किया। गोरे परेशान हो उठे। एक शुभ-चिन्तक ने गाधी जी को आकर बताया कि एक गोरा उन्हे जान से मारने का निश्चय कर चुका है अत वह चम्पारन छोडकर तुरन्त चले जाएँ। गाधी जी ने मुसकराकर बात टाल दी और उसी रात को उस गोरे की कोठी पर जा पहुँचे। गोरे ने अचानक रात को एक अजनबी को देखा तो चौक पडा। पूछा, "कौन हो तुम ?"

"गाधी!" महात्मा गाधी ने सक्षिप्त उत्तर दिया। फिर उसकी तरफ स्थिर दृष्टि से देखते हुए बोले, "तुम मुझे मारना चाहते हो न, लो मैं अकेला ही आया हूँ। तुम अपनी इच्छा पूर्ण कर सकते हो।"

गाधी जी के अदम्य साहस से गोरा हतप्रभ हो उठा। साहसी व्यक्तित्व के जादू का उस पर ऐसा प्रभाव पडा कि वह गाधी जी के सामने नतमस्तक हो गया और उनसे क्षमा-याचना की।

61 मिट्टी की महक मे पला राष्ट्रपति

न्यायाधीश ने जेल अधिकारियो को फटकारते हुए कहा, "जब मेरे आने की पूर्व सूचना थी तो बन्दी को अभी तक उपस्थित

क्यो नही किया जा सका ?"

समय बीतता जा रहा था। इस सभ्रात वन्दी का मुकदमा जेल मे ही सुनने के लिए उक्त अग्रेज न्यायाधीश को जेल परिसर मे ही नियुक्त किया गया था। वन्दी थे ज्योतिर्मठ के जगदगुरु शकराचार्य। जेल-अधिकारी परेशान थे। वे पूजा मे समाधिस्थ बैठे शकराचार्य जी को उठाकर तो ला नही सकते थे।

"ठीक है, अब मैं जाता हूँ। ध्यान रहे, ठीक तीन बजे सायँकाल बन्दी को अवश्य उपस्थित किया जाय।" न्यायाधीश क्रोध से कापते हुए चले गये।

जगद्‌गुरु शकराचार्य के एक भाषण से क्षुब्ध अग्रेजी सरकार ने उन पर राजद्रोह का मुकदमा दायर किया था। सायँकाल निर्धारित समय पर शकराचार्य जी अपनी गरिमामय चाल से चले आ रहे थे। घडी की सुइयाँ आगे बढती जा रही थी। प्रत्येक क्षण न्यायाधीश को क्रोधोन्मत्त बना रहा था। निरीक्षक एव अधिकारी भी सहमे हुए-से थे कि न जाने यह क्रुद्ध न्यायाधीश शकराचार्य जी का क्या अपमान कर बैठे। उन्हे कसी कठोर सजा दे बैठे। शकराचार्य समस्त हिन्दुओ के पूज्य थे, अत चिन्ता स्वाभाविक थी। राजेन्द्र बाबू विशेष रूप से इस अवसर पर उपस्थित रहने की अनुमति प्राप्त करके मुगेर जेल आये थे। वे परेशान थे कि मेरे सम्मुख यह कैसा धर्म सकट आया है। मेरे ही सम्मुख हिन्दुओ के परमपूज्य जगद्‌गुरु शकराचार्य का अपमान हो गया तो कितनी ग्लानि की बात होगी। एक क्षण उन्होने कुछ सोचा और जैसे ही शकराचार्य जी ने न्यायाधीश के कक्ष मे प्रथम पग रखा कि राजेन्द्र बाबू ने अपनी टोपी उतारकर शकराचार्य जी के चरणो मे रख दी और

साष्टाग प्रणाम की मुद्रा मे उनके चरण पकडकर लेट गये। इस आकस्मिक घटना से सभी स्तब्ध रह गये। देश के महत्त्वपूर्ण राजनीतिक नेता के रूप मे ख्यातिप्राप्त राजेन्द्र बाबू को इस प्रकार जगद्गुरु के चरणो मे गिरते देख वातावरण बदल गया। सभी उपस्थित लोगों ने आदरपूर्वक झुककर जगद्गुरु का अभिवादन किया। न्यायाधीश भी इस भारतीय सन्यासी के प्रति जनमानस मे ऐसी श्रद्धा देखकर अभिभूत हो उठा और उसका सारा क्रोध समाप्त हो गया। राजेन्द्र बाबू ने अपनी आत्मकथा मे लिखा है कि जगद्गुरु का मेरे सम्मुख कही अपमान न हो जाए इसलिए उसी क्षण एकाएक मुझे यह उपाय सूझा और अपनी तथा हिन्दू समाज की समस्त श्रद्धा समेटकर मैं सार्वजनिक रूप से उनके चरणो मे लिपट गया। राजेन्द्र बाबू की यह सूझ बूझ एकाकी नही थी। उनके रोम रोम मे भारतीय सस्कृति की मर्यादाएँ मुखरित थी।

भारत के राष्ट्रपति बन जाने के बाद भी उनका अत करण करोडो देशवासियो के उत्कर्ष के लिए छटपटाता रहता था। वे अकसर प्रात काल दूर तक घूमने जाते। एक दिन वे घूमते हुए चाणक्यपुरी के पास मजदूरो की झोपडियो तक जा पहुँचे। उन दिनो इस क्षेत्र का विकास अधूरा था। उदार राष्ट्रपति का हृदय विचलित हो उठा। वह अपने सचिव की ओर घूमकर कह उठे, "युग युग की यह कैसी विषमता है, भव्य अट्टालिकाओ के समीप ही तिनको से बनी ये झोपडियाँ सदैव दिखती आयी हैं।" उन्होने देखा कि मजदूर उनके दर्शनो के लिए उत्सुकता से निहार तो रहे हैं किन्तु निकट आने का साहस नही कर पा रहे हैं। राजेन्द्र बाबू ने सकेत से उन्हें बुलाया। निकट आने पर स्नेहपूर्वक पूछा,

"आपको यहाँ कोई तकलीफ तो नही है ?"

"एक ही कष्ट है हुजूर, हमारी बस्ती मे कोई भी नल नही है। सामने वाली कोठी मे एक है, जिससे उनकी घास मे पानी लगता है, लेकिन वे भरने नही देते है। मेहरबानी करके एक नल लगवा दीजिए," एक मजदूर ने साहस करके कहा।

"तुम लोग यहाँ कितने दिनो से रहते हो ?" राजेद्र बाबू ने पूछा।

"हम यहा दो साल से रह रहे हैं, बाबूजी ! पहले यहाँ जगल था, हम लोगो ने ही कोठिया बनाई है। अब तो काफी रौनक हो गई है, हुजूर !" मजदूरो ने उत्तर दिया।

राजेद्र बाबू के हृदय मे कही भारी टीस उभर उठी, आखे नम हो आयी। वे सचिव की ओर मुडे, "सुनो वाल्मीकि" उन्होने गभीर स्वर मे कहा, "कल तक यहाँ नल लग जाना चाहिए।"

अगले दिन राष्ट्रपति फिर उधर घूमने निकले। मजदूरो के चेहरो पर आज अजीब खुशी थी। नल लग चुका था।

"आपका इधर आना हमारे लिए वरदान बन गया, बाबूजी !" एक मजदूर ने कहा।

राष्ट्रपति डॉ॰ राजेद्रप्रसाद उन मजदूरो की खुशी मे ऐसे खुश दिख रहे थे जैसे उन्होने आज ही कोई इच्छित वर पाया हो। कि तु थोडी ही देर बाद उनकी सचित व्यथा उमड पडी, उन करोडो पीडित देशवासियो की समस्या का हल तब तक कैसे हो सकता है जब तक प्रत्येक व्यक्ति मे, चाहे वह शासक हो या अधिकारी, अपने कर्तव्य का बोध उत्पन्न नही होता।

यह कर्तव्य बोध कितना उत्पन्न हो सका यह अलग प्रश्न

है, किंतु राजेन्द्र बाबू अपनी अंतिम श्वास तक अनवरत कर्तव्य की ज्योति जगाते रहे।

62 जब संस्कृति के सुमन खिले

"वीरवर दुर्गादास, यह उचित होगा कि आप शाही बच्चों को दिल्ली ले जाने की अनुमति दें।" औरंगजेब के प्रतिनिधि ईश्वरदास ने कहा।

"दोनों बच्चों पर बादशाह का पूर्ण अधिकार है, ईश्वरदास!' दुर्गादास ने कहा, 'बादशाह के पौत्र और पौत्री उनकी अमानत हैं मेरे पास। उन्हें मैं स्वयं दिल्ली पहुँचा दूंगा, किन्तु शर्त यह है कि मुगल सम्राट औरंगजेब को अजीतसिंह को जोधपुर नरेश स्वीकार करना होगा।"

ईश्वरसिंह सारी स्थिति के लिए तैयार होकर आया था। औरंगजेब के सामने इसके अलावा कोई उपाय न था इसलिए यह शर्त स्वीकार कर ली गई। नीति-निपुण दुर्गादास इस सरलता से औरंगजेब को झुकते देख चकित हो गए लेकिन चतुर कूटनीतिज्ञ दुर्गादास भी मँजे हुए राजनीतिक शतरंज के खिलाड़ी थे। अतः वे शहजादे बुलन्द अख्तर को जोधपुर ही छोड़कर केवल शहजादी सफायतुन्निसा को दिल्ली ले गये। पौत्री (शहजादी) ने जैसे ही बाबर के कदमों में सिर झुकाया तो प्रेम से उसे आशीर्वाद देते हुए औरंगजेब बोला, "बेटी, तुम अभी तक काफिरों के साथ रही हो, तुम्हें अपने मजहब का ज्ञान नहीं है, इसलिए अच्छा होगा कि अब कुरान पढ़कर अपने मजहब का नूर (प्रकाश) हासिल करो।"

"वावाजान !" शहजादी वोली, "मैंने तो कुरान पढा है। चाचा दुर्गादास जी ने मुझे कुरान पढाने और इस्लामी तालीम हासिल करने के लिए योग्य मौलवी नियुक्त कर दिए थे।" वह इठलाकर वोली, 'आप पूछ देखिये, मुझे कुरान की पूरी आयतें याद हैं।"

"क्या सच ?" वादशाह का मुह अचरज से खुला रह गया।

"यह सच है वावा !" शहजादी ने जवाब दिया।

"हिन्दुओ की वहुत सी वातें ऐसी हैं वेटी, कि उनसे फरिश्ते भी शायद मुकावला न कर सकें।" भावविभोर होकर औरगजेव ने वेटी को प्यार से थपथपाया।

"यह हमारा स्वाभाविक कतव्य था, जहाँपनाह !" सहसा दरवार मे प्रवेश करते हुए दुर्गादास ने कहा। वे वोले, 'आपसे हमारा मतभेद हो सकता है शहशाह, किसी धर्म से हमारा विद्वेप नही। इसलिए शाही वच्चो को वह इस्लामी शिक्षा दी गई जो आपके मजहव के मुताविक उन्हें दी जानी चाहिए थी। ये शाही वच्चे हमारे मेहमान थे और हमारे पास शहशाह की धरोहर थे। हमे गौरव है कि हम इनकी उचित देखभाल कर पाये।'

इस्लाम का कट्टर पुजारी औरगजेव दुर्गादास की सदाशयता से अभिभूत हो उठा। उसकी आखें तरल हो आयी।

"दुर्गादास, तुम फरिश्ते हो।" वादशाह ने कहा और उसी क्षण अजीतसिंह को जोधपुर-नरेश स्वीकार करने का फर्मान जारी कर दिया।

"शहशाह, इस सम्मान का अधिकारी मैं नही, हम हिन्दुओ की गौरवमय सस्कृति है जिसके कारण युग-युग से हमारे रक्त मे

उच्च मानवता के ये सस्कार प्रवाहित हैं।"

नि सदेह उस दिन वह भारतीय सस्कृति की उदात्तता की ही विजय थी कि दुर्गादास की सदाशयता से अभिभूत हो कठोर-हृदय शहशाह औरगजेब ने तत्क्षण अजीतसिंह को जोधपुर नरेश मानने का फर्मान जारी कर दिया।

63 : ज्ञान की सार्थकता

"महाराज, कार्य बहुत है, प्रयोगशाला के लिए मुझे एक औ सहायक चाहिए।" विक्रमादित्य युग के विख्यात रसायनाचा नागार्जुन ने महाराज से निवेदन दिया। "आपके काय अवरोध तो राजकीय क्षति है, आचाय, उसे हम नही होने देंगे कल ही आपके पास दो सुयोग्य युवको को भेज दिया जायेग उनमे से आप योग्यतम का चुनाव कर लें।" महाराज नागार्जुन को वचन दिया।

दूसरे दिन प्रात निश्चित समय पर दो सुयोग्य युव नागार्जुन के निवास पर उपस्थित थे। दोनो की समान योग्यत एव दक्षता देखकर आचार्य चकित हुए कि किसे सेवा का अवस दें। कुछ क्षण के चिन्तन के पश्चात् वे बोले, "मैं एक रसाय आप दोनो को देता हूँ। कल प्रात जो इसकी परख कर और इ कोई नया पदार्थ बनाकर लायेगा, उसी को मैं अपना सहाय बनाऊँगा, लेकिन एक बात ध्यान रहे"—उन्होने जाते हुए युव से कहा, "तुम्हें राजमार्ग को पार करते हुए ही जाना होगा युवक आश्चयचकित थे कि राजमार्ग से जाने का ही निदे आखिर क्यो दिया आचार्य ने, कि्तु वे बिना कोई प्रश्न वि

सादर नमन कर चले गये। आचार्य ने देखा कि दूसरे दिन दोनो युवक समय पर उपस्थित है, लेकिन जहा एक के चेहरे पर विजय की दीप्ति है, वही दूसरा म्लान मुख नजरें झुकाए खडा है। दोनो से पूछताछ करने पर पहले वाले युवक ने बताया कि उसने पदाथ को न केवल परख लिया है, बल्कि एक रसायन भी आदेशानुसार तैयार कर लिया है। दूसरे युवक ने खेदपूर्वक अपने कर्तव्य को पूरा न कर पाने की विवशता बताते हुए कहा, "आचाय-प्रवर, जिस समय मैं राजमार्ग से गुजर रहा था, मैंने देखा कि एक पेड के नीचे एक असहाय रुग्ण व्यक्ति पडा हुआ है, जिसे कोई भी पूछने वाला नही है। मैं अपने मानवीय कतव्य की अवहेलना न कर सका और उसे उठाकर अपने घर ले गया।" युवक ने दुखपूवक कहा, 'मैं जानता था कि ऐसा करने से मैं आचाय की सेवा से वचित हो जाऊँगा, लेकिन असहाय व्यक्ति की सेवा मुझे अपने स्वाथ से कही अधिक महत्त्वपूण लगी।"

'तुमने ठीक ही किया, युवक!" आचाय नागार्जुन ने मुसकराते हुए उसकी पीठ ठोकी। वे बोले, "मुझे रसायन बनाने वाले यन्त्र मानव की नही, ऐसे सवेदनशील हृदय की ही जरूरत है, जो पीडित मानवो के दुख-दर्द मे समरस हो सके।" आचाय ने कहा, "मनुष्य की सर्वोत्तम योग्यता उसकी मानवीयता है। शेष सब गौण हैं।" नागार्जुन ने कहा, "श्रेष्ठतम ज्ञान विज्ञान और रसायन आखिर मानव की सेवा के लिए ही तो हैं। सेवा-भाव ही नही तो इनकी उपयोगिता कैसी? इसीलिए मैं सहायक के रूप मे तुम्हारा चयन करता हूँ।"

□ □